

कलम में जिसकी सच्चाई का असर होता है,
उसका हर शब्द जनता के लिए खबर होता है।
स्याही से सिर्फ शब्द नहीं लिखे जाते,
कलम से कई सच सामने लाए जाते।
कलम जब सच के लिए उठ जाती है,
तो बड़ी से बड़ी बात सामने आ जाती है।
ईमानदार कलम की ताकत निराली होती है,
उसमें समाज की तस्वीर दिखाई देती है।

भ्रष्टाचार और फासी शक्तियों के विरुद्ध शंखनाद

नवयुग

R.N.I. No. 15990/67

संस्थापक संपादक: स्व. श्री चिंजीव जोशी 'सरोज'

हिन्दी पाक्षिक

वर्ष-60 अंक-9

जयपुर, गुरुवार, 15 अक्टूबर, 2026

मूल्य- 10 रुपए पृष्ठ- 8

कदमताल करती महंगाई, बढ़ता असंतोष और एकजुट विपक्ष बड़ी परेशानी का सबब!

लोकतांत्रिक आंदोलनों को 'देशद्रोह' करार देने की राजनीति - एक गंभीर संकट

इस पक्ष का विशेष आलेख
'विनोद जोशी' द्वारा

नई दिल्ली। गांधी जयंती 2 अक्टूबर को नई दिल्ली में विशेष गहन पुनरीक्षण तथा एक अखबार में छपी तथाकथित अनियमितताओं और मुख्य चुनाव अधिकारी ज्ञानेश कुमार के इस्तीफे की मांग को लेकर काँकरोच जनता पार्टी तथा लोकसभा में विपक्ष के नेता की अगुआई में विरोध प्रदर्शनों का सिलसिला शुरू हुआ। मोदी सरकार के साढ़े बारह साल के इतिहास में ऐसे प्रदर्शन पहले कभी नहीं हुए थे। बात एकाध प्रदर्शन की नहीं, बल्कि दिन प्रतिदिन बेहद मजबूती के साथ खड़े होते देश के युवा वर्ग, जिसे आज 'जेन-जी' के नाम से पहचाना जा रहा है, के संकल्प और प्रतिबद्धता की है। विशेषकर दिल्ली पुलिस के निहत्थी लड़कियों पर बल प्रयोग और यौन हिंसा के आरोपों के बीच पूरी एक पीढ़ी का सरकार के विरोध में सड़कों पर उतरना अपने



आप में एक बड़ी घटना है, जिसके दूरगामी निहितार्थ होंगे। इस आग में घी डालने का काम बेतहाशा बढ़ती महंगाई ने किया है।

सुरक्षा से महंगाई

राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय के आंकड़ों के अनुसार, भारत की खुदरा महंगाई दर सितंबर में बढ़कर 5.54% पर पहुंच गई है। यह भारतीय रिजर्व बैंक के संतोषजनक दायरे के ऊपरी छोर (6%) की ओर तेजी से बढ़ रही है। वहीं उपभोक्ता खाद्य मूल्य सूचकांक आधारित खाद्य महंगाई दर बढ़कर 7.74% हो गई है। रसोई की मुख्य जरूरतें जैसे

प्याज, लहसुन, अदरक और सब्जियों के दामों में पिछले एक साल में भारी उछाल देखा गया है (विशेषकर प्याज के दाम सालाना आधार पर 100% से अधिक बढ़े हैं)। थोक महंगाई के मोर्चे पर स्थिति अधिक चिंताजनक रही है, जहाँ यह बढ़कर दो अंकों में यानी 11.39% पर पहुंच गई है। इसका सीधा असर उत्पादकों और निर्माताओं की लागत पर पड़ रहा है, जो अंततः तैयार माल के जरिए उपभोक्ताओं की जेब पर भारी पड़ रहा है।

ऐसा नहीं है कि महंगाई का कारण सिर्फ केंद्र सरकार है, मध्य



पूर्व और अन्य वैश्विक मोर्चों पर जारी तनाव के कारण अंतरराष्ट्रीय बाजार में कच्चे तेल और ईंधन की कीमतों में उतार-चढ़ाव आया, जिसका सीधा असर देश में परिवहन और लॉजिस्टिक्स लागत पर पड़ा है। साथ ही अनियमित मानसून, बेमौसम बारिश और जलवायु परिवर्तन के कारण प्रमुख फसलों के उत्पादन पर बुरा असर पड़ा है, जिससे खाद्य आपूर्ति शृंखला बाधित हुई है।

इसके आगे देखें तो अमेरिकी डॉलर के मुकाबले भारतीय रुपए में उतार-चढ़ाव और कमजोरी के कारण आयातित वस्तुओं और ऊर्जा

की लागत में वृद्धि हुई है। लेकिन, यह भी साफ दिखाई दे रहा है कि दुलमुल विदेशनीति और ऊर्जा जरूरतों में अमेरिकी दबाव के सामने घुटने टेकती सरकार की कमजोरी ने विपक्ष में नई जान फूंक दी है।

मोदी सरकार को यह स्वीकार करना होगा कि बढ़ती महंगाई ने शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों के मध्यम वर्गीय तथा गरीब परिवारों की बचत क्षमता को कमजोर किया है। यद्यपि सरकार और केंद्रीय बैंक ब्याज दरों और आपूर्ति शृंखला को नियंत्रित करने के लिए निरंतर उपाय कर रहे हैं, लेकिन वैश्विक

अनिश्चितताओं और घरेलू खाद्य कीमतों के दबाव के बीच महंगाई पर लगाम कसना एक बड़ी चुनौती बना हुआ है। यह भी तथ्य है कि इस राजनीतिक उबाल को और अधिक तीव्र करने का काम देश में बेतहाशा बढ़ती महंगाई ने किया है।

सामाजिक-राजनीतिक बदलाव की छतपटाहट

भारतीय राजनीति में वर्तमान दौर एक ऐसे सामाजिक-राजनीतिक बदलाव का गवाह बन रहा है, जिसकी कल्पना कुछ वर्ष पहले तक मुश्किल थी। राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली में काँकरोच जनता पार्टी के बैनर तले और मुख्य विपक्षी दलों के नेतृत्व में हुए विरोध प्रदर्शनों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि देश की युवा पीढ़ी, जिसे आज वैश्विक स्तर पर जेन-जी कहा जाता है, अब व्यवस्था के खिलाफ खुलकर मुखर होने लगी है। आज का युवा रोजगार के अवसरों की कमी, बढ़ती बेरोजगारी

अ और **शेष भाग पृष्ठ 2 पर**

राजस्थान की सियासत: पंचायती राज चुनाव का बिगुल

बिगड़ती कानून व्यवस्था और भजनलाल सरकार के प्रयास

इस पक्ष का विशेष संपादकीय 'विनोद जोशी' द्वारा

राजस्थान की राजनीतिक और सामाजिक भूमि पिछले कुछ समय से बेहद हलचल भरी और संवेदनशील दौर से गुजर रही है। राज्य के क्षितिज पर जहां एक ओर आगामी पंचायत चुनावों की सरगमी ने राजनीतिक दलों की धड़कनें तेज कर दी हैं, वहीं दूसरी ओर प्रदेश की कानून-व्यवस्था की स्थिति पर गंभीर सवाल खड़े करने वाली घटनाओं ने आम जनता को झकझोर कर रख दिया है। विशेष रूप से भरतपुर जिले में पूर्व विधायक अतर सिंह भड़ना की दर्दनाक हत्या जैसी घटनाओं ने सुरक्षा तंत्र की पोल खोल दी है। इन सब के बीच, मुख्यमंत्री भजनलाल



शर्मा के नेतृत्व वाली सरकार के समक्ष राज्य के चहुंमुखी विकास, प्रशासनिक कसावट और सुशासन को बनाए रखने की एक बड़ी चुनौती खड़ी है।

पंचायत चुनाव का रण



राजस्थान की राजनीति की असल प्रयोगशाला ग्रामीण अंचल यानी गांवों की चौपालें और पंचायतें मानी जाती हैं। आगामी पंचायत चुनावों को लेकर राज्य का राजनीतिक पारा चढ़ चुका है। यह चुनाव केवल स्थानीय निकायों की सत्ता हासिल करने का जरिया नहीं हैं, बल्कि यह इस बात का भी लिटमस टेस्ट हैं कि ग्रामीण जनता वर्तमान राज्य सरकार के कामकाज से कितनी संतुष्ट या असंतुष्ट है। जहां एक तरफ मुख्यमंत्री भजनलाल शर्मा के नेतृत्व में भाजपा चाकचौबंद है, वहीं दूसरी कांग्रेस भी निकाय चुनावों में की गई गलतियों से सबक लेते हुए मोर्चा संभालने

को तैयार दिख रही है।

भाजपा की रणनीति

राज्य में पूर्ण बहुमत की सरकार चलाने वाली भारतीय जनता पार्टी के लिए पंचायत चुनाव प्रतिष्ठा का प्रश्न बने हुए हैं। भाजपा अपनी केंद्र और राज्य की योजनाओं (जैसे किसान कल्याण, ग्रामीण विकास और महिला उद्योग) को आधार बनाकर मैदान में उतर रही है। पार्टी का जोर ग्रामीण मतदाताओं के बीच अपनी पैठ को और मजबूत करने पर है। भाजपा की संगठनात्मक ताकत निर्विवाद कांग्रेस से ज्यादा है और डबल इंजन सरकार का फायदा बोनस है।

हालांकि, हालिया समय में बढ़ती महंगाई, कुछ स्थानीय मुद्दों और प्रशासनिक नाराजगी के चलते ग्रामीण मतदाताओं में असंतोष की सुगबुगाहट भी देखने को मिली है। पार्टी के भीतर टिकट

शेष भाग पृष्ठ 2 पर

प्रथम पृष्ठ का शेष भाग... संपादकीय

वितरण और स्थानीय क्षत्रपों के बीच समन्वय बिठाना एक बड़ी चुनौती है। कणों-व्यवस्था की बिगड़ती स्थिति भी भाजपा के लिए चिंता का विषय है।

कांग्रेस के आक्रामक तेवर

पहले विधानसभा चुनाव फिर निकाय चुनावों में हार के बाद कांग्रेस पार्टी ग्रामीण क्षेत्रों में अपनी खोई हुई जमीन वापस पाने के लिए पूरी ताकत झोंक रही है। कांग्रेस लगातार महंगाई, बेरोजगारी, और ग्रामीण बुनियादी ढांचों के मुद्दों को उठाकर भाजपा सरकार को घेर रही है। पंचायत चुनावों में पार्टी का मुख्य हथियार ग्रामीण अंचल की समस्याएं और स्थानीय सत्ता विरोधी लहर का लाभ उठाना है।

कांग्रेस के लिए सबसे बड़ी चुनौती अपने आंतरिक गुटबाजी को दरकिनार कर एकजुट होकर चुनाव लड़ना है, ताकि भाजपा के मजबूत संगठनात्मक नेटवर्क का मुकाबला किया जा सके। हाल ही में प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष गोविन्द सिंह डोटसरा, नेता प्रतिपक्ष टीकाराम जूली ने पूर्व मुख्यमंत्री अशोक गहलोत को प्रदेश में राजनीति की मुख्यधारा में लाने के प्रयास भी किए हैं। साथ ही कांग्रेस के राष्ट्रीय महासचिव सचिन पायलट ने भी सक्रियता दिखाई है। इस सबके बावजूद कांग्रेस के लिए रास्ता अभी लंबा भी है और कठिन भी!

क्षेत्रीय दलों का दखल

राजस्थान की राजनीति पारंपरिक रूप से द्वि-ध्रुवीय (भाजपा और कांग्रेस) रही है, लेकिन हालिया वर्षों में क्षेत्रीय दलों और निर्दलीयों का प्रभाव काफी तेजी से बढ़ा है। राष्ट्रीय लोकतांत्रिक पार्टी , भारतीय ट्राइबल पार्टी सहित कुछ स्थानीय क्षत्रप मारवाड़, मेवाड़ और शेखावाटी जैसे अंचलों में क्षेत्रीय दल स्थानीय समीकरणों को पूरी तरह पलटने की क्षमता रखते हैं।

पंचायत चुनावों में राजनीतिक दलों के आधिकारिक

प्रत्याशियों से ज्यादा बागी और स्थानीय क्षत्रप असर डालते हैं। जातिगत समीकरण (विशेषकर जाट, गुर्जर, राजपूत और आदिवासी बहुल सीटों पर) क्षेत्रीय दलों और निर्दलीयों के लिए संजीवनी का काम करते हैं, जिससे कई बार मुख्य दलों का गणित बिगड़ जाता है।

बिगड़ती कानून-व्यवस्था

किसी भी सभ्य समाज और प्रगतिशील राज्य की पहचान उसकी सुदृढ़ कानून-व्यवस्था से होती है, लेकिन हालिया कुछ घटनाओं ने राजस्थान की कानून-व्यवस्था पर गंभीर प्रश्नचिह्न लगा दिए हैं। प्रदेश में अपराधियों के बढ़तौ हौसले और पुलिस प्रशासन की लचर कार्यशैली का सबसे वीभत्स उदाहरण हाल ही में भरतपुर जिले में देखने को मिला।

भड़ाना हत्याकांड

भरतपुर जिले के वैर थाना क्षेत्र के भौंड़ा गांव के पास बयाना विधानसभा सीट से पूर्व विधायक एवं कद्दावर भाजपा नेता अतर सिंह भड़ाना (उम्र 68 वर्ष) की एक खनन लीज और स्टोन-क्रशर प्लांट को लेकर उपजे विवाद के दौरान पीट-पीटकर हत्या कर दी गई। यह पूरा विवाद पिछले कुछ समय से क्रशर प्लांट के रास्ते, चारागाह भूमि के उपयोग और स्थानीय स्तर पर खनन गतिविधियों को लेकर चल रहे तनाव का परिणाम था। स्थिति इतनी हिंसक हो गई कि भीड़ द्वारा किए गए हमले में पूर्व विधायक गंभीर रूप से घायल हो गए और जयपुर के एसएमएस अस्पताल ले जाते समय उनकी मृत्यु हो गई।

इस सनसनीखेज हत्याकांड के बाद राज्य की कानून-व्यवस्था पर चौतरफा सवाल उठे। मामले की गंभीरता को देखते हुए सरकार और पुलिस विभाग को सख्त कदम उठाने पड़े, जिसके तहत वैर थानाधिकारी को निलंबित किया गया तथा अन्य पुलिस अधिकारियों को भी एपीओ

किया गया। यह घटना यह दर्शाती है कि स्थानीय स्तर पर खुफिया तंत्र और पुलिस प्रशासन किस हद तक विफल साबित हो रहे हैं।

सुरक्षा का संकट

अतर सिंह भड़ाना हत्याकांड केवल एक व्यक्तिगत या स्थानीय विवाद नहीं है, बल्कि यह इस बात का प्रतीक है कि राजस्थान में किस प्रकार कानून के डर के बजाय अराजकता हावी होती जा रही है। प्रदेश के विभिन्न हिस्सों में गैंगवार, फिरौती के लिए फायरिंग, दलितों और महिलाओं के खिलाफ अपराध तथा खनन माफियाओं का आतंक आम नागरिकों की सुरक्षा को खतरे में डाल रहा है। जब सत्ताधारी दल से जुड़े एक पूर्व विधायक ही सुरक्षित नहीं हैं, तो आम आदमी की सुरक्षा का अंदाजा सहज ही लगाया जा सकता है।

मुख्यमंत्री के प्रयास

दिसंबर 2023 में सत्ता की कमान संभालने वाले मुख्यमंत्री भजनलाल शर्मा के सामने राज्य को ‘विकसित राजस्थान’ बनाने और सुशासन स्थापित करने का बड़ा दायित्व है। सरकार ने अपनी ओर से कई मोर्चों पर सुधार के प्रयास शुरू किए हैं। सरकार ने कार्यभार संभालते ही एसआईटी का गठन किया और पेपर लीक मामलों में लित कई बड़े चेहरों और सरगनाओं पर शिकंजा कसा, जिससे युवाओं में सिस्टम के प्रति विश्वास बहाल करने की कोशिश की गई।

पूर्वी राजस्थान नहर परियोजना के संशोधित स्वरूप और यमुना जल समझौते जैसी ऐतिहासिक वार्ताओं को जमीन पर उतारने के लिए सरकार ने त्वरित प्रशासनिक कदम उठाए हैं, जिससे भविष्य में जल संकट से निजात मिलने की उम्मीद है। प्रदेश में रोजगार के नए अवसर पैदा करने और औद्योगिक विकास को गति देने के लिए ग्लोबल इन्वेस्टर्स समिट जैसे आयोजनों के जरिए

प्रथम पृष्ठ का शेष भाग --- कदमताल करती महंगाई, बढ़ता असंतोष और एकजुट विपक्ष बड़ी परेशानी का सबब!

भविष्य को लेकर बनी अनिश्चितता से त्रस्त है। विशेष तौर पर, जब शांतिपूर्ण प्रदर्शन कर रहे युवाओं और निहत्थी लड़कियों पर पुलिस द्वारा बल प्रयोग और सुरक्षा बलों की कार्रवाई के आरोप सामने आते हैं, तो यह पूरा असंतोष एक जन-आंदोलन का रूप ले लेता है। सत्ता और जनता के बीच का यह संवादहीनता का संकट इस नए राजनीतिक क्षोभ का मुख्य कारण है।

काँकरोच जनता पार्टी जैसे नए राजनीतिक समूहों का उदय, नेता प्रतिपक्ष राहुल गांधी के नेतृत्व में एकजुट होता विपक्ष और सड़कों पर उतरता युवा वर्ग इस बात का स्पष्ट संकेत है कि देश की एक पूरी पीढ़ी अब पारदर्शी शासन, आर्थिक सुरक्षा और रोजगार के ठोस अवसरों की मांग कर रही है। सरकार और नीति निर्माताओं के लिए यह समय आत्ममुग्धता से बाहर निकलकर बढ़ती महंगाई पर लगाम कसने और युवाओं की जायज अपेक्षाओं को पूरा करने की गंभीर रणनीति बनाने का है, अन्यथा यह असंतोष आने वाले समय में लोकतंत्र की दिशा और दशा दोनों को प्रभावित कर सकता है।

लोकतांत्रिक आंदोलनों को बदनाम करने की रणनीति

भारतीय लोकतंत्र इस समय एक बेहद संवेदनशील और निर्णायक दौर से गुजर रहा है। देश की राजधानी दिल्ली से लेकर विभिन्न राज्यों तक सड़कों पर उतरते युवा वर्ग, जेन-जी की बढ़ती सक्रियता, और विपक्षी दलों के नेतृत्व में हो रहे मुखर विरोध प्रदर्शन इस बात का स्पष्ट संकेत हैं कि समाज के भीतर गहराता असंतोष अब सतह पर आ चुका है। लेकिन इन लोकतांत्रिक और जन-आंदोलनों से निपटने के लिए सत्ता पक्ष यानी भारतीय

जनता पार्टी और उसके रणनीतिकारों द्वारा अपनाई जा रही शब्दावली, विशेष तौर पर इन्हें विदेशी पैसे का खेल और देशद्रोह करार देना, एक बेहद खतरनाक प्रवृत्ति बनती जा रही है। ऐसा नहीं है कि देश में यह पहली बार हो रहा है, कांग्रेस शासित सरकारों ने भी यह खेल खेला था और परिणाम भी भुगते हैं।

संवादहीनता

जब भी युवा पीढ़ी, छात्र, किसान या आम नागरिक अपनी जायज मांगों (जैसे बढ़ती बेरोजगारी, आसमान छूती महंगाई और नीतिगत विफलताओं) को लेकर सरकार के सामने सवाल खड़े करते हैं, तो उन्हें सुनने के बजाय उन पर विदेशी साजिश या देशद्रोह का ठप्पा लगा दिया जाता है। यह दृष्टिकोण सरकार और जनता के बीच की खाई को चौड़ा करता है और संवाद के लोकतांत्रिक दरवाजों को बंद कर देता है।

इतिहास गवाह है कि असहमति किसी भी जीवंत लोकतंत्र की ऑक्सीजन होती है। जब असहमति को अपराध या राष्ट्र-विरोधी गतिविधि मान लिया जाता है, तो शासन तंत्र संवाद के बजाय दमन का सहारा लेने लगता है। शांतिपूर्ण प्रदर्शनों और निहत्थे युवाओं व छात्रों पर बल प्रयोग को उचित ठहराने के लिए देशद्रोह के नैरेटिव का उपयोग समाज में अविश्वास और भय का माहौल पैदा करता है।

अभिजात्य अहंकार

जब सत्तारूढ़ दल हर जन-आंदोलन को किसी बाहरी या विदेशी ताकत की साजिश बताने लगता है, तो यह माना जाने लगता है कि नेतृत्व अपनी विफलताओं (जैसे खुदरा व थोक महंगाई और रोजगार के संकट) की जिम्मेदारी लेने से बचना

चाहता है। यह आत्ममुग्धता प्रधानमंत्री और पार्टी की राजनीतिक विश्वसनीयता को दीर्घकाल में भारी नुकसान पहुंचा सकती है।

आज का युवा पारदर्शी शासन, आर्थिक सुरक्षा और अपने भविष्य को लेकर बेहद जागरूक है। जब उनकी पी पीढ़ा को राष्ट्र-विरोधी करार दिया जाता है, तो यह पीढ़ी सत्ता पक्ष से वैचारिक और राजनीतिक रूप से पूरी तरह दूर हो जाती है। यह अलगाव किसी भी राजनीतिक दल के लिए चुनाव और जनसमर्थन के मोर्चे पर घातक सिद्ध हो सकता है।

दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र के रूप में भारत की पहचान उसकी सहनशीलता, विविधता और लोकतांत्रिक मूल्यों के कारण रही है। घरेलू असंतोष को लगातार देशद्रोह या विदेशी षड्यंत्र बताने से वैश्विक मंचों पर देश की लोकतांत्रिक साख पर भी सवालिया निशान लगते हैं।

मोदी सरकार के लिए नई राजनीतिक चुनौती

भारतीय राजनीति का परिदृश्य एक ऐसे मोड़ पर खड़ा है, जहाँ पारंपरिक राजनीतिक समीकरणों और सत्ता पक्ष के वर्चस्व को कड़े राजनीतिक और सामाजिक बदलावों का सामना करना पड़ रहा है। देश की राजधानी दिल्ली से लेकर विभिन्न राज्यों तक युवा वर्ग (जेन-जी) की बढ़ती सक्रियता और सड़कों पर उतरते जनसैलाब के बीच, लोकसभा में विपक्ष के नेता राहुल गांधी का बढ़ता जुझारूपन और उनकी युवाओं के बीच बढ़ती लोकप्रियता वर्तमान सत्ताधारी दल और विशेषकर मोदी सरकार के लिए एक गहरी राजनीतिक चेतावनी बनती जा रही है।

युवाओं में बढ़ता आकर्षण

आज का युवा बढ़ती बेरोजगारी, रोजगार के अनिश्चित अवसरों और आर्थिक दबावों से

त्रस्त है। ऐसे में, राहुल गांधी द्वारा लगातार जनता के बीच जाकर उनकी समस्याओं को उठाना, संसद से लेकर सड़क तक आक्रामक रुख अपनाना और नीतिगत विफलताओं पर सीधे सवाल खड़े करना युवाओं को आकर्षित कर रहा है।

शांतिपूर्ण प्रदर्शन कर रहे युवाओं और छात्रों पर प्रशासनिक कार्रवाई के बीच उनका मुखर होकर साथ देना उनके राजनीतिक जुझारूपन को रेखांकित करता है, जिससे युवा पीढ़ी में उनके प्रति एक नई उम्मीद जगी है।

विपक्ष की गोलबंदी

लंबे समय से बिखरा और कमजोर माना जाने वाला विपक्ष अब राहुल गांधी के नेतृत्व के इर्द-गिर्द गोलबंद होता दिखाई दे रहा है। क्षेत्रीय दल और अन्य विपक्षी नेता भी इस बढ़ते जन-आंदोलन और आक्रामक राजनीतिक रणनीति के साथ कंधे से कंधा मिलाकर खड़े नजर आ रहे हैं।

यह एकजुटता इस बात का संकेत है कि अब राजनीतिक लड़ाई केवल वैचारिक नहीं, बल्कि एक प्रभावी मोर्चेबंदी का रूप ले चुकी है, जो सत्ता पक्ष के लिए एक बड़ी चुनौती है। जब आर्थिक मोर्चे पर आम जनता परेशान होती है, तो इस प्रकार का नेतृत्व और विपक्ष का आक्रामक तेवर सरकार के खिलाफ सत्ता विरोधी लहर को तीव्र करने का काम करता है।

यह स्थिति त्यों बनी?

पिछले एक दशक से मोदी सरकार के पक्ष में जो अजेय और अपराजेय होने का राजनीतिक नैरेटिव बना हुआ था, उसे युवा वर्ग की मुखरता और विपक्ष की इस नई गोलबंदी से बड़ा झटका लगा है। जब जनता के बुनियादी मुद्दे (रोटी, रोजगार, महंगाई) राजनीतिक बहस के केंद्र में आते हैं, तो

निवेशकों को आकर्षित करने के प्रयास किए जा रहे हैं।

प्रशासनिक चुनौतियां

भले ही सरकार के इरादे स्पष्ट हों, लेकिन जमीनी स्तर पर प्रशासनिक मशीनरी की सुस्ती और पुलिस प्रशासन में समन्वय की कमी सरकार के लिए बड़ी बाधा बन रही है। अतर सिंह भड़ाना हत्याकांड जैसी घटनाओं ने यह साबित कर दिया है कि पुलिस के खुफिया तंत्र को अधिक सक्रिय और जवाबदेह बनाने की सख्त जरूरत है। अपराधियों के मन में कानून का खौफ पैदा करने के लिए त्वरित और कठोर कार्रवाई अनिवार्य है।

जिलों में तैनात प्रशासनिक और पुलिस अधिकारियों को राजनीतिक दबाव से मुक्त कर पेशेवर तरीके से काम करने की छूट देनी होगी, तभी आम जनता तक पारदर्शी और त्वरित न्याय पहुंच सकेगा।

आत्ममंथन का समय

राजस्थान आज एक ऐसे मुहाने पर खड़ा है जहां राजनीतिक आकांक्षाएं, सामाजिक बदलाव और सुरक्षा की चिंताएं एक-दूसरे से उलझी हुई हैं। आगामी पंचायत चुनाव जहां एक ओर लोकतंत्र की जड़ों को मजबूत करने का अवसर प्रदान करते हैं, वहीं दूसरी ओर यह दलों को यह चेतावनी भी देते हैं कि जनता अब कोरे वादों के बहकावे में आने वाली नहीं है। दूसरी ओर, अतर सिंह भड़ाना हत्याकांड जैसी घटनाएं चेतावनी हैं कि यदि समय रहते कानून-व्यवस्था और पुलिस प्रशासन की कार्यप्रणाली में मूलभूत सुधार नहीं किए गए, तो यह न केवल आम जनमानस में असुरक्षा की भावना को बढ़ाएगा, बल्कि मुख्यमंत्री भजनलाल शर्मा की सुशासन की छवि को भी आघात पहुंचाएगा। सरकार के लिए यह आत्ममंथन का समय है कि वह विकास के दावों के साथ-साथ प्रदेश के हर नागरिक को सुरक्षित और भयमुक्त माहौल देने की अपनी प्राथमिक जिम्मेदारी को पूरी सख्ती से निभाएं।

चुनावी समीकरण तेजी से बदल सकते हैं।

यदि सरकार इन जन-आंदोलनों और बढ़ती राजनीतिक चुनौती से निपटने के लिए केवल प्रशासनिक बल या इन्हें विदेशी साजिश व देशद्रोह करार देने की रणनीति अपनाती है, तो यह जनता और युवाओं के बीच सत्ता की छवि को और अधिक आहत कर सकता है। यह संवादहीनता सरकार के राजनीतिक संकट को और गहरा सकती है।

राहुल गांधी की बढ़ती लोकप्रियता, उनका सड़क पर उतरकर संघर्ष करने का अंदाज और उसके पीछे लामबंद होता विपक्ष इस बात का स्पष्ट संदेश है कि भारतीय राजनीति अब एकतरफा नहीं रही। यदि समय रहते सरकार ने बढ़ती महंगाई, रोजगार के संकट और जनता के बढ़ते असंतोष पर ठोस और पारदर्शी कदम नहीं उठाए, तो यह स्थिति आने वाले समय में मोदी सरकार के लिए एक गंभीर राजनीतिक संकट में बदल सकती है।

लब्बेलुआब यह कि..

लब्बेलुआब यह है कि लोकतांत्रिक आंदोलनों और जनता के आक्रोश को विदेशी ताकतों का खेल या देशद्रोह करार देना तात्कालिक रूप से राजनीतिक रूप से भले ही एक ढाल लगे, लेकिन यह एक भस्मासुर की तरह है जो अंततः सरकार और खुद नेतृत्व के राजनीतिक संकट को और अधिक बढ़ा देगा। सत्ता और शासन का असली दायित्व जनता के आंसुओं और उसकी जायज शिकायतों को सुनने का है, न कि उन्हें खारिज करने का। यदि समय रहते इस आक्रामक और अविश्वास आधारित राजनीति को संवाद और समाधान में नहीं बदला गया, तो यह संकट देश और शासक दल दोनों के लिए संभालना कठिन हो जाएगा।



चुनाव आयुक्तों की आपत्तियां और ज्ञानेश कुमार

‘इंडियन एक्सप्रेस’ की बहुचर्चित रिपोर्ट पर एक नजर

भारत के निर्वाचन आयोग द्वारा जून 2025 में बिहार से शुरू की गई विशेष गहन पुनरीक्षण प्रक्रिया, जो कि मतदाता सूचियों की एक सामान्य सफाई प्रक्रिया है, ने 30 राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में ड्राफ्ट मतदाता सूची से 13 करोड़ से अधिक नाम हटा दिए हैं। इस वजह से निर्वाचन आयोग इस बात को लेकर तीखी सार्वजनिक बहस के केंद्र में आ गया है कि किसे वोट देने का अधिकार मिले और किसे नहीं।

एक समाचार पत्र की जांच से यह पता चलता है कि खुद तीन सदस्यीय निर्वाचन आयोग के भीतर इसी अवधि के दौरान बार-बार इन्हें मुद्दों पर सवाल उठाए गए। और यह सवाल तीन में से दो चुनाव आयुक्तों सुखबीर सिंह संधू और विवेक जोशी द्वारा उठाए गए थे।

एसआईआर का राष्ट्रीय स्तर पर कार्यान्वयन सभी तीनों आयुक्तों की देखरेख में हुआ है। लेकिन संधू और जोशी ने पिछले 10 महीनों के दौरान लिए गए फैसलों और जारी किए गए आदेशों पर, जिनके बारे में उनका कहना है कि ये उनकी जानकारी के बिना लिए गए, कम से कम 14 बार (एक ही दिन में चार बार सहित) आधिकारिक तौर पर लिखित आपत्ति दर्ज कराई है। इस बात के निहितार्थ बेहद चौंकाने वाले तथा महत्वपूर्ण हैं।

कारण यह है कि ये आपत्तियां निर्वाचन आयोग के मुख्य दायित्व के केंद्र से जुड़ी हैं— नए मतदाताओं का पंजीकरण, मतदाता सूचियों से नाम काटा जाना और उनका बहाल किया जाना; एसआईआर प्रक्रिया में मतदाताओं को बहाल करने वाले आदेशों के खिलाफ अपील दायर करना; तथा पूरी मतदाता सूची की अभिरक्षा (कस्टडी) और सुरक्षा। इन सभी आपत्तियों की प्रतियां मुख्य चुनाव आयुक्त ज्ञानेश कुमार को भी भेजी गईं। कुछ आपत्तियां उनकी देखरेख में काम करने वाले उप चुनाव आयुक्तों को भी भेजी गईं।

ऐसी ही एक लिखित आपत्ति में, संधू ने शिकायत की है कि आयोग ने दो आयुक्तों की लिखित सलाह के खिलाफ जाकर काम किया और उनके इस कदम को अनधिकृत और अवैध बताया। हाल ही में, परंपरा से एक बड़ा फेरबदल करते हुए, जोशी और संधू ने अलग-अलग कैबिनेट सचिव को पत्र लिखकर कार्य विभाजन (वर्क एलोकेशन) में किए गए बदलावों की शिकायत की, जिसके परिणामस्वरूप मतदाता सूचियों की आईटी रीड की निगरानी की एक परत को हटा दिया गया था। उन्होंने स्पष्ट कर दिया— ये बदलाव उनकी जानकारी के बिना किए गए थे और उन्होंने इन्हें खारिज कर दिया। इसके बाद, 9 सितंबर को सीईसी और दोनों ईसी की बैठक हुई, जो चार महीनों में उनकी पहली पूर्ण बैठक थी। यह बात और भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि ये तीनों एनडीए सरकार द्वारा चुने गए थे और प्रधानमंत्री, केंद्रीय गृह मंत्री और विपक्ष के नेता की चयन समिति द्वारा 2023 के अधिनियम के तहत नियुक्त किए गए थे। जब मार्च 2024 में संधू और ज्ञानेश कुमार को चुनाव आयुक्त बनाया गया था, तब विपक्षी सदस्य, कांग्रेस के अधीर रंजन चौधरी ने नियुक्ति प्रक्रिया पर असहमति दर्ज कराई थी। फरवरी 2025 में जब कुमार को सीईसी के रूप में पदोन्नत किया गया और जोशी को नियुक्त किया गया, तब लोकसभा में विपक्ष के नेता राहुल गांधी ने भी अपनी असहमति दर्ज कराई थी।

21 सितंबर को, द इंडियन एक्सप्रेस ने दोनों चुनाव आयुक्तों द्वारा उठाए गए मुद्दों पर आयोग को एक प्रश्नावली भेजी और पूछा कि उनकी चिंताओं को दूर करने के लिए क्या किया गया था। इस पर कोई जवाब नहीं मिला। 21 सितंबर को दोनों ईसी को यह पूछने

के लिए ईमेल भी भेजे गए थे कि क्या उनकी चिंताओं का समाधान किया गया है। दोनों ईमेल में यह भी जवाब मांगा गया था कि क्या 9 सितंबर की बैठक के दौरान इन मुद्दों को उठाया गया था। दोनों ईमेल के बाद सोमवार और मंगलवार को फोन कॉल भी किए गए। लेकिन कोई प्रतिक्रिया नहीं मिली।

1. नया मतदाता कौन है, फॉर्म-6 क्यों बदला गया?

इस साल जुलाई में, जैसा कि ‘द इंडियन एक्सप्रेस’ द्वारा सबसे पहले रिपोर्ट किया गया था, हर वयस्क नागरिक को मतदाता बनने के लिए जो फॉर्म भरना होता है, उसमें एक ऐसा सवाल पूछा जाने लगा जो पहले कभी नहीं पूछा गया था। आवेदन को एसआईआर से जोड़ते हुए, इसमें यह पूछा गया कि क्या नया मतदाता या उसके माता-पिता/दादा-दादी पिछली एसआईआर की मतदाता सूची में मौजूद हैं। आवेदक इसका उत्तर दिए बिना आगे नहीं बढ़ सकते थे। यह सब इस तथ्य के बावजूद हुआ कि मई में, जोशी ने फाइल पर चेतावनी दी थी कि सरकार द्वारा नियमों में संशोधन किए बिना फॉर्म 6 को



इसके उत्तराधिकारी इसीआईनेट पर होती है। पिछले एक साल में, दोनों आयुक्तों ने बार-बार यह सवाल उठाया है कि क्या ईआरओ की इस सूची तक पहुंच अब सीमित की जा रही है।

इस साल मई में, जब राज्यों में एसआईआर गति पकड़ रहा था जोशी ने इसी बात पर लाल झंडी दिखाई थी कि यह मतदाता सूची डेटाबेस का क्रमिक केंद्रीकरण है और उन्होंने एक ऑडिट का प्रस्ताव रखा ताकि यह प्रमाणित किया जा सके कि संबंधित सांविधिक प्राधिकारियों के अलावा किसी अन्य के पास (मतदाता) डेटाबेस में कोई भी बदलाव करने का क्रेडेंशियल नहीं है।

अगस्त में, संधू ने इस बात को दोहराया। उन्होंने दर्ज किया कि राज्य स्तर के चुनाव अधिकारी यह रिपोर्ट कर रहे हैं कि उनके पास उस ईआरओनेट पोर्टल तक उचित और पूर्ण पहुंच नहीं है, जो डिजिटल प्रणाली है जिसके माध्यम से वे मतदाता सूची बनाए रखते हैं। उन्होंने इस बात को उठाया कि निर्वाचन आयोग की

आईटी महानिदेशक सीमा खन्ना के पास कानून द्वारा दिए गए सांविधिक प्राधिकारियों को उचित और पूरी पहुंच तथा

चरण को आयोग के हाथों से बाहर कर दिया और न्यायिक अधिकारियों को तार्किक विसंगतियों के लिए चिह्नित 60 लाख मतदाताओं की स्थिति पर निर्णय लेने के लिए कहा। इनमें से 27 लाख मतदाताओं को बाद में आयोग द्वारा हटा दिया गया था। इसके बाद अदालत ने उन फैसलों के खिलाफ अपील सुनने के लिए सेवानिवृत्ति उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के न्यायाधिकरण (ट्रिब्यूनल) गठित करने का आदेश दिया। पिछले हफ्ते, आयोग ने अदालत को बताया कि ट्रिब्यूनल के समक्ष 38 लाख अपीलें लंबित थीं— 22.21 लाख अपीलें बहाल होने की मांग करने वाले हटाए गए मतदाताओं द्वारा दायर की गई थीं। अन्य 16.10 लाख अपीलें उन मतदाताओं के खिलाफ दायर की गईं जिन्हें न्यायिक अधिकारियों ने शामिल किया था, और उन्हें हटाने की मांग की गई थी। आयोग ने यह नहीं बताया कि उन्हें किसने दायर किया था। यही वह मुद्दा था जिसे संधू ने उठाया था— कि आयोग उन मतदाताओं के खिलाफ अपील कर रहा था जिन्हें न्यायिक अधिकारियों ने शामिल किया था। अगस्त में, उन्होंने आयोग के अधिकारियों को लिखकर पूछा, इसीआईनेट की ओर से ये अपीलें दायर करने के लिए किसे अधिकृत किया गया था, और किसके द्वारा? और वास्तव में इलेक्शन कमीशन की ओर से ये अपीलें किसने दायर कीं? उन्होंने दर्ज किया कि न तो उन्हें, न ही जोशी को और न ही पश्चिम बंगाल के वर्तमान मुख्य निर्वाचन अधिकारी को अपील दायर करने के आधार या प्रक्रिया के बारे में सूचित किया गया था।

4. गोवा: सॉफ्टवेयर ने पात्र मतदाताओं को क्यों खारिज कर दिया?

वही केंद्रीकरण, जिसे जोशी और संधू ने बार-बार उठाया था, अंततः गोवा में संभावित मतदाताओं को मताधिकार से वंचित करने का कारण बन गया। 29 जनवरी को, सुप्रीम कोर्ट ने आदेश दिया कि एसआईआर के दौरान तार्किक विसंगतियों के लिए चिह्नित मतदाताओं को अंतिम सूची प्रकाशित होने से पहले दस्तावेज जमा करने और अपनी बात रखने की अनुमति दी जाए। तार्किक विसंगति एक ऐसी बेमेल स्थिति है जो सॉफ्टवेयर द्वारा तब सामने आती है जब वह किसी मतदाता को पुरानी सूची में किसी माता-पिता या रिश्तेदार से जोड़ने की कोशिश करता है— ऐसा नाम जो मेल नहीं खाता, या उम्र का अंतर जो सही नहीं बैठता। गोवा के ईआरओ ने इन मामलों की सुनवाई की। प्रस्तुत दस्तावेजों के आधार पर, उन्होंने अंतिम सूची के लिए 97 मतदाताओं को पात्र पाया। सॉफ्टवेयर के पास उस फैसले को दर्ज करने का कोई तरीका नहीं था।

11 फरवरी से 17 फरवरी के बीच, गोवा के मुख्य निर्वाचन अधिकारी के कार्यालय ने राज्य के प्रभारी वरिष्ठ उप चुनाव आयुक्त ज्ञानेश भारती को आठ बार पत्र लिखा, और हर बार आईटी महानिदेशक सीमा खन्ना को इसकी प्रति (कॉपी) भेजी। इसमें उस रोलबैक विकल्प की मांग की गई जो ईआरओ को सुप्रीम कोर्ट के निर्देशानुसार पहले हटाए गए नामों को वापस जोड़ने की अनुमति देता। जैसे-जैसे अंतिम मतदाता सूची के प्रकाशन की समय सीमा नजदीक आ रही थी, इन अनुरोधों का कोई जवाब नहीं मिला। समय पर यह प्रावधान सक्षम नहीं किया गया। गोवा की अंतिम मतदाता सूची से उन 97 लोगों के नाम छूट गए। सत्तानवे मतदाता एक छोटी संख्या है, हालांकि यह 97 से कहीं आगे की बात है—यह भारत के निर्वाचन आयोग का काम है कि वह यह सुनिश्चित करे कि हर वैध वोट गिना जाए।

प्रमुख निष्कर्ष: चुनाव आयोग के भीतर आंतरिक कलह और असहमति

01 इस महीने में, तीन में से दो चुनाव आयुक्तों ने मुख्य (ज्ञानेश कुमार) के नेतृत्व में चुनाव पैनल के निर्णयों के खिलाफ 14 औपचारिक आपत्तियां दर्ज कराई हैं।

02 आयुक्त सुखबीर सिंह संधू और विवेक जोशी का कहना है कि मूलभूत निर्णय उनकी जानकारी या अनुमोदन के बिना लिए गए।

03 आंतरिक कलह का केंद्र, विशेष गहन पुनरीक्षण (SIR) है, जो 13 करोड़ मतदाताओं के नामों को प्रभावित करता है।

04 चुनाव आयुक्तों ने नए मतदाता पंजीकरण के लिए फॉर्म 6 में 'अनधिकृत, अवैध' परिवर्तनों को चुनौती दी।

05 आईटी डिवीजन के माध्यम से मतदाता सूची डेटाबेस में 'अनधिकृत, अवैध' परिवर्तनों को चुनौती दी।

06 आईटी डिवीजन के माध्यम से मतदाता सूची डेटाबेस के 'क्रमिक केंद्रीकरण' पर चिंता जताई गई।

07 डिजिटल प्रणालियों का केंद्रीकरण शाखा की खिलाफ चुनाव आयोग के पारंपरिक विकेंद्रीकृत सुरक्षा कवच को कमजोर करता है।

08 अधिकारियों ने वैधानिक अधिकारियों की पहुंच को प्रतिबंधित करने के लिए आईटी सहनिर्देशक के कानूनी अधिकार पर सवाल उठाया।

09 सुप्रीम कोर्ट के आदेशों के बावजूद, गोवा में सॉफ्टवेयर की समस्याओं के कारण 97 पात्र मतदाताओं की मताधिकार से वंचित होना पड़ा।

10 यह कलह 2023 अधिनियम के उस आदेश पर तनाव को उत्पन्न करती है, जिसके अनुसार चुनाव आयोग का कामकाज सर्वसम्मति से होना चाहिए।

11 आपत्तियां सीईसी ज्ञानेश कुमार को भी भेजी गईं, अधिकार में संकेत देता है।

12 अतीत की व्यक्तिगत असहमति के विपरीत, इस कलह में आयोग के बहुमत को निर्णयों से किनारे किया जा रहा है।

इस तरह से नहीं बदला जा सकता है, और संधू इससे सहमत थे। इसके बावजूद यह बदलाव किया गया।

द इंडियन एक्सप्रेस द्वारा जुलाई में इस बदलाव की पहली रिपोर्ट के बाद, संधू ने 13 अगस्त को रिकॉर्ड पर यह दर्ज कराया कि यह अनधिकृत और अवैध था और इसे तुरंत हटाया जाना चाहिए। सोमवार सुबह तक, वह सवाल वहां मौजूद था।

2. मतदाता सूची तक किसकी पहुंच होनी चाहिए?

मतदाता सूची में धांधली के हर राजनीतिक आरोप के खिलाफ आयोग का सबसे मजबूत बचाव यह रहा है कि सूची तैयार करने का काम विकेंद्रीकृत है। प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र की मतदाता सूची उसके निर्वाचन पंजीकरण अधिकारी, जो कि जमीन पर एक सांविधिक (स्टेचुअरी) प्राधिकारी होता है, द्वारा तैयार और नियंत्रित की जाती है। आमतौर पर, ईआरओ उप-मंडल मजिस्ट्रेट होता है। यह सूची एक सॉफ्टवेयर, ईआरओनेट और

संचालन की स्वतंत्रता को प्रतिबंधित करने का कोई कानूनी अधिकार नहीं है।

दोनों ईसी यह कह रहे थे कि जिस बचाव पर निर्वाचन आयोग दशकों से निर्भर रहा है, उसे उसकी अपनी आईटी डिवीजन के भीतर से ही तोड़ा जा रहा है।

3. पश्चिम बंगाल: अपीलों को किसने अधिकृत किया?

पश्चिम बंगाल में एसआईआर का सबसे बड़ा विरोध हुआ था। चुनाव परिणाम में इसकी भूमिका का कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिला। जिन 294 सीटों पर चुनाव हुए, उनमें से 49 सीटों पर एसआईआर के तहत हटाए गए नाम जीत के अंतर से अधिक थे। लेकिन इनमें भी लाभ लगभग समान रूप से बंटा हुआ था— 26 पर भाजपा ने और 21 पर टीएमसी ने जीत हासिल की थी। लेकिन जिस तरीके से नाम हटाए गए, उसके कारण सुप्रीम कोर्ट ने फरवरी 2026 में एसआईआर के अंतिम

मस्क को हमारे स्पेस नेटवर्क व इंटरनेट में क्यों दिलचस्पी है?

विराग गुप्ता (विख्यात विधि विशेषज्ञ)

मालूम होता है कि दुनिया के सबसे रईस व्यक्ति इलॉन मस्क के लिए मुनाफा ही सर्वोपरि है। वे सोशल मीडिया से प्रोफंडा फैलाने के साथ ही चुनावी चंदों से सरकारी नीतियों को भी बदलने में माहिर हैं।

सैटेलाइट से इंटरनेट देने वाले स्टारलिनक प्रोजेक्ट का लाइसेंस हासिल करने के लिए मस्क ने मोदी और अम्बानी पर तंज कसा। भारत में रिलायंस जियो और भारती एयरटेल का ब्रॉडबैंड और फिक्स्ड-लाइन इंटरनेट बाजार में 80% अधिकार है। इससे जुड़े 6 पहलुओं को समझें-

1. लॉकडाउन करोड़ों लोगों के लिए आपदा, गरीबी और बेरोजगारी का दौर था। लेकिन उसी दरमियान मस्क की सम्पत्ति 10 गुना बढ़ी। 2020 के कोविड-वर्ष में ही भारत में अंतरिक्ष सेक्टर में खुली 5 अर्थव्यवस्था और निजीकरण की शुरुआत हुई।

सरकार और कानून को हल्के में लेते हुए मस्क की कंपनी ने गैरकानूनी तरीके से 2021 में लाइसेंस के बिना ही भारत में सैटेलाइट इंटरनेट शुरू करने की कोशिश की थी, जिसे उन्हें बंद करना पड़ा। लेकिन इस पर कोई कार्रवाई नहीं हुई।

2. सुप्रीम कोर्ट के 2012 के फैसले के अनुसार राष्ट्रीय सम्पदा स्पेक्ट्रम का नीलामी के आधार पर आवंटन होना चाहिए। पर 2023 के दूरसंचार कानून से सैटेलाइट इंटरनेट के लिए नीलामी के बजाय

प्रशासनिक आदेश से स्पेक्ट्रम आवंटन का रास्ता साफ हो गया। एयरटेल के वन-वेब को अप्रैल 2022, जियो को दिसम्बर 2022 में, जबकि स्टारलिनक को जून 2025 में अर्थराइजेशन मिला था। लेकिन सुरक्षा क्लियरेंस के बाद ही इन्हें फाइनल लाइसेंस मिल सकेगा। तब मस्क भेदभाव का आरोप कैसे लगा सकते हैं?

डी व्यू को सुरक्षा के लिए बड़ा खतरा बताया था। लेकिन इसे आगे चलकर केंद्र सरकार से अनुमति मिल गई।

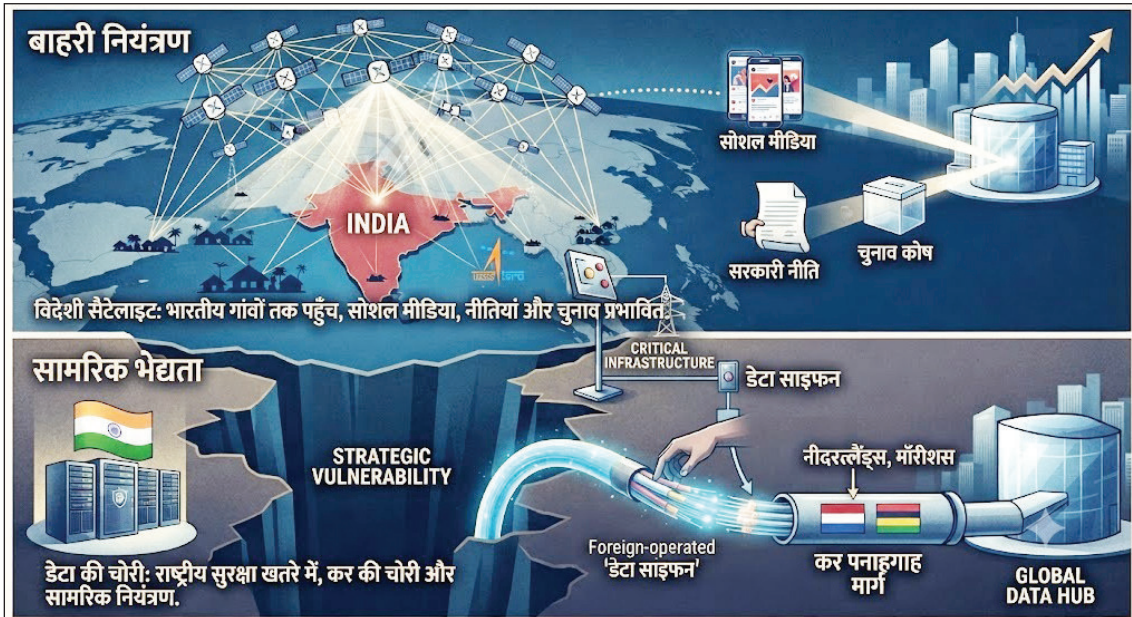
4. क्रिप्टो, एआई, डेटा सेंटर और सैटेलाइट इंटरनेट के कारोबार को सफल बनाने के लिए मस्क ने 2022 में ट्विटर (एक्स) को खरीदा। मस्क का ग्रोक एआई

5. मस्क कोई परोपकारी नहीं, उल्टे विशुद्ध कारोबारी व्यक्ति हैं। भारत में घूस देना और लॉबीइंग गैर-कानूनी हैं, लेकिन मस्क डंके की चोट पर लॉबीइंग करते हैं। ट्रम्प और रिपब्लिकन पार्टी को 60 करोड़ डॉलर से ज्यादा चुनावी चंदा देने वाले मस्क ने टैक्स बचाने के लिए अपनी कंपनी के हेडक्वार्टर को टेक्सास

राज्य में शिफ्ट कर लिया था। कैपिटल गेन, विद होल्डिंग टैक्स और डिविडेंड पर टैक्स बचाने के लिए ही मस्क ने नीदरलैंड्स के टैक्स हैवन के माध्यम से भारत में निवेश की योजना बनाई है।

6. ईरान और यूक्रेन युद्ध के साथ बांग्लादेश के सीमावर्ती राज्यों में स्टारलिनक की भूमिका संदिग्ध रही है। 11 हजार दूरस्थ गांवों में इंटरनेट देने के नाम पर स्टारलिनक भारत के अंतरिक्ष और इंटरनेट नेटवर्क पर कब्जा करना चाह रही है। भारतीय उद्योगपतियों के एकाधिकार से जुड़े मस्क के आरोपों पर भारत में कानून के तहत ठोस कार्रवाई होनी चाहिए। गृह और रक्षा मंत्रालय की आपत्ति और खुफिया एजेंसियों के अलर्ट को दरकिनार करके सैटेलाइट इंटरनेट को इजाजत देने से सामरिक सुरक्षा खतरे में पड़ सकती है।

11 हजार गांवों में इंटरनेट देने के नाम पर स्टारलिनक भारत के अंतरिक्ष और इंटरनेट नेटवर्क पर कब्जा करना चाह रही है। खुफिया अलर्ट को दरकिनार कर सैटेलाइट इंटरनेट को इजाजत देने से सामरिक सुरक्षा खतरे में पड़ सकती है।



3. पृथ्वी की निचली कक्षा में संचालित होने वाली सैटेलाइट सेवाओं पर नियंत्रण बड़ा मुद्दा है। संसदीय समिति के अध्यक्ष निशिकांत दुबे के अनुसार 2013-14 में मनमोहन सरकार ने सैटेलाइट आधारित इंटरनेट सेवाओं से जुड़े खतरों के बारे में आगाह किया था। पूर्व राष्ट्रपति कलाम, इसरो और सेना ने गूगल के 3-

प्लेटफॉर्म गैर-कानूनी तरीके से एक्स के करोड़ों यूजर्स के डेटा का व्यावसायिक इस्तेमाल कर रहा है। नियमों के तहत एक्स ने शिकायत निवारण अधिकारी का विवरण भी जारी नहीं किया। ऐसे में सैटेलाइट इंटरनेट के सामरिक क्षेत्र में डेटा स्थानीयकरण और अन्य नियमों के पालन की अपेक्षा कैसे की जा सकती है?

शेखर गुप्ता

फिलहाल प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की सत्ता के 25 साल पर चर्चाओं का दौर है। उनके समर्थक जश्न मना रहे हैं। उनके मंत्रिमंडल ने उनकी प्रशंसा का प्रस्ताव पास किया है। आलोचक भी सार्वजनिक जीवन में उनके 25 साल के सफर का विश्लेषण कर रहे हैं, लेकिन निर्ममता से।

यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि भारत में हर सत्ताधारी के कार्यकाल का तीसरा साल सबसे मुश्किल भरा रहा है। यह साल आते-आते जैसे चुनौतियों का पहाड़ खड़ा हो जाता है, थकान उभरने लगती है, महत्वाकांक्षी उत्तराधिकारी अपनी धार तेज करने लगते हैं।

इनमें से आखिरी बात मोदी पर लागू नहीं होती है। लेकिन वे अपने इस कार्यकाल के तीसरे साल में बाकी सभी चुनौतियों से रू-ब-रू हैं। उनका मंत्रिमंडल लड़खड़ा रहा है। योगी आदित्यनाथ, देवेन्द्र फडणवीस और हिमंत बिस्वा सरमा को छोड़ उनके बाकी सभी मुख्यमंत्री तमाम चुनौतियों से निपट नहीं पा रहे हैं।

लोकप्रिय जनमत के बाजार में प्रतियोगी और परस्पर विरोधी धारणाओं की भरमार है। मोदी-भाजपा की कहानी अभी भी सबसे उल्लेखनीय बनी हुई है, हालांकि यह पहले जितनी जोरदार नहीं रह गई है। मोदी के तीन लुभावने, और अब तक अजेय साबित होते रहे सूत्र 2014 के बाद से पहली बार कड़ी परीक्षा का सामना कर रहे हैं।

ये हैं - हिंदुत्ववादी राष्ट्रवाद; विस्तृत आकार लेता जनकल्याण कार्यक्रम, जिसे कुशलता से, न्यूनतम प्रतिरोध या 'लीकेज' के साथ लागू किया जाता रहा



छोटी-छोटी चुनौतियां मिलकर बड़ी हो जाती हैं!

मोदी सरकार के सामने चुनौतियां बढ़ रही हैं!

हैं; और सबकी आंखों के सामने ठोस इन्फ्रास्ट्रक्चर का निर्माण। और यह सब भ्रष्टाचार से अछूता रहा है!

ये सूत्र अब भी कायम हैं। फर्क यह आया है कि दूसरी बातें उभर आई हैं। हम केवल 'जेन-जी' की ही बात नहीं कर रहे। तमाम तरह के इन फैक्टर्स को अलग-अलग देखें तो वे छोटे दिख सकते हैं। लेकिन जब वे एक साथ उभरते हैं तो वह तस्वीर चिंतनीय हो जाती है। क्या मोदी का सामना ऐसी ही तस्वीर से हो रहा है?

आइए, कुछ तथ्यों पर गौर करें:

1. चुनाव आयोग की विश्वसनीयता में नाटकीय गिरावट और चुनाव प्रक्रिया की शुद्धता पर बढ़ता संदेह।
2. व्यापक होती यह धारणा कि शीर्ष न्यायपालिका अस्पष्ट आदेश जारी करती है।
3. एक रिटायर्ड अधिकारी (सुभाष चंद्र गर्ग) ने जीडीपी के सरकारी आंकड़ों की विश्वसनीयता पर देशव्यापी बहस की शुरुआत करा दी।
4. भारतीय रिजर्व बैंक ने भविष्यवाणी कर दी कि महंगाई तीन वर्षों के अपने उच्चतम स्तर को छूने

वाली है और रुपया भारी संकट से जूझ रहा है, बावजूद इसके कि भारतीय बैंकों ने अपनी जमा राशि में बढ़ोतरी करने का महंगा मगर सफल प्रयास किया है।

5. दो चुनाव आयुक्तों ने सीईसी के फैसलों से असहमति दर्ज कराने को अखबारी मुकदमा शुरू किया।
6. विपक्षी दल, खासकर राहुल गांधी दिल्ली की घेराबंदी करने में सफल रहे, और सुर्खियों में आ गए।
7. रातोरात उभरी सीजेपी ने नीट से लेकर सरकारी स्कूलों की बदहाली तक का एजेंडा तय कर दिया।
8. चिराग पासवान ने कानून-व्यवस्था के मुद्दे पर अपने ही गठबंधन वाली बिहार सरकार की आलोचना कर दी। और उनसे भी छोटे सहयोगी ओम प्रकाश राजभर ने यूपी को छोटे राज्यों में बांटने के मुद्दे पर प्रधानमंत्री से अपनी कथित बातचीत का खुलासा किया, जबकि योगी आदित्यनाथ इस विचार के सख्त खिलाफ हैं।
9. सरकार की छवि तो निर्णय लेने वाली हुकूमत की मानी जाती है, लेकिन हमने उसकी यह निर्णयहीनता भी देखी कि चुनाव क्षेत्रों का परिसीमन करें कि न करें या संसद के उस सत्र का क्या करें, जिसका अनिश्चितकाल के लिए स्थगन करने के दो महीने बाद भी सत्रावसान नहीं किया गया है। भाजपा जो संविधान संशोधन

चाहती है, उसके लिए बहुमत जुटाने के लिए आत्मविश्वास की कमी दिखलाई देती है।

10. मंत्रिमंडल में फेरबदल या खाली पदों को भरने में असमंजस या लंबी हिचक भी साफ दिखती है। कई मंत्रालयों में मंत्रियों की नियुक्ति अपेक्षित है।
11. शेयर बाजार निरंतर घाटे में है, जबकि अमेरिका से लेकर यूरोप, जापान, दक्षिण कोरिया और चीन ही नहीं, पाकिस्तान तक दुनियाभर के शेयर बाजारों में तेजी रही है। चुनौतियों को कबूलने की अनिच्छा इसलिए आत्मघाती बन जाती है, जब लाखों की आबादी वाला मध्यवर्ग अपनी बचत को 'एसआईपी' में डाल रहा है, जिसका सरकार स्वागत कर रही है। यह विदा होते विदेशी पोर्टफोलियो निवेशकों को सुनहरी विदाई देने जैसा भी है।
12. और अंत में, भारत के लिए ऐसी वैश्विक स्थिति बनी है, जैसी कई दशकों में नहीं बनी थी। ट्रम्प ने भारत के लिए कई क्षेत्रों में रणनीतिक विकल्प सीमित कर दिए। वे रणनीतिक स्वायत्तता के हमारे दावे को भी हर दिन नई चुनौती देते हैं। ट्रम्प के अलावा यूक्रेन-रूस युद्ध, जलता पश्चिम एशिया, उत्तेजित एनर्जी बाजार और पाकिस्तान के लिए खुली नई रणनीतिक खिड़की भी जोड़ें। और ये सब कमजोर मानसून के बाद है! मानसून पर तो किसी भी सरकार का बस नहीं है, लेकिन ये असंतोष उस साल में उभर रहे हैं, जो कृषि के लिहाज से औसत से नीचा रहेगा। लेकिन बड़े मसलों की जड़ें उन तीन सबसे बुनियादी फैक्टर्स में निहित हैं, जिन्होंने भारत को बीते दशकों में एकजुट और मजबूत बनाया है। ये हैं - संविधान में भरोसा और यह धारणा कि इसे कोई भी नहीं रद्द कर सकता; न्यायपालिका की निष्पक्षता; और चुनाव आयोग की स्वायत्तता। ये तीनों आज दबाव में हैं।

नागरिकता साबित करने का बोझ किस पर होना चाहिए ?

बरखा दत्त (वरिष्ठ पत्रकार)

इस बात से अंतर्फल नहीं पड़ता कि आप भाजपा समर्थक हैं या कांग्रेस समर्थक। लेकिन मतदाता सूचियों में संशोधन की जो प्रक्रिया एसआईआर के रूप में चली है, उसके परिणाम सबके सामने हैं। एक भारतीय के रूप में हम अक्सर अपने पड़ोसी देशों की राजनीतिक अस्थिरता को देखा करते थे।

पाकिस्तान में सेना के नेतृत्व वाली सरकारें, बांग्लादेश में हिंसक अशांति, नेपाल और श्रीलंका में उथल-पुथल तथा म्यांमार में सैन्य तख्तापलट। ये दृश्य देखकर हमें अपने मजबूत लोकतंत्र पर स्वाभाविक गर्व होता था और राहत भी मिलती थी। हमारे यहां एक चुनाव से दूसरे चुनाव तक सत्ता का हस्तांतरण हमेशा शांतिपूर्ण ढंग से होता रहा है।

लेकिन हमारे लोकतांत्रिक इतिहास में पहली बार चुनावी जनादेश पर बहस हो रही है, उसे चुनौती दी जा रही है, उस पर सवाल उठाए जा रहे हैं। माना कि ज्ञानेश कुमार पहले ऐसे सीईसी नहीं हैं, जिन पर राजनीतिक पक्षधरता का आरोप लगा हो।

कांग्रेस के शासनकाल में भी नवीन चावला पर ऐसे आरोप लगे थे। एम.एस.गिल तो चुनाव आयोग में भूमिका निभाने के बाद यूपीए सरकार में मंत्री भी बन गए थे। इन अर्थों में चुनाव आयोग के राजनीतिकरण का केवल हालिया इतिहास नहीं है। लेकिन इन दिनों जो हो रहा है, वह बिल्कुल अलग स्तर का है।

हाल के वर्षों में चुनाव आयोग के आचरण को लेकर होने वाली बहसों मुख्यतः इस बात पर केंद्रित रही हैं कि क्या आदर्श आचार संहिता का पालन हुआ, या आयोग का कोई अधिकारी किसी खास नेता की हेट-स्पीच या हेलिकॉप्टर की लैंडिंग को लेकर जरूरत

से ज्यादा नरम या सख्त रहा। लेकिन यह पहली बार है, जब चुनावों को लेकर उठे विवाद ने संविधान-प्रदत्त मताधिकार को प्रभावित किया है।

चुनाव आयोग का काम और वास्तव में उसका कर्तव्य तो यही है कि वह ज्यादा से ज्यादा लोगों को चुनाव में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करे। इस पूरी

करने को क्यों कहा गया- वह भी इतनी जटिल प्रक्रिया के जरिए ?

और हमेशा की तरह, इसकी मार गरीबों, बेघर लोगों और समाज के हाशिये पर जी रहे लोगों पर ज्यादा पड़ी है। शहरों से बाहर यात्रा करने वाला कोई भी व्यक्ति जानता है कि अगर आप किसी बुजुर्ग से

मतदाताओं के नाम सूची से हटाए गए हैं।

भाजपा ने हाल ही में बताया कि इनमें से 2.8 करोड़ नाम मृत लोगों के थे, जबकि 6.3 करोड़ लोग दूसरी जगह चले गए थे; एक करोड़ नाम दोहराव वाली प्रविष्टियां थीं और तीन करोड़ लोगों का पता नहीं चल पाया। इसके बावजूद, हर कोई किसी-न-किसी ऐसे व्यक्ति को जानता है, जिसे मतदाता सूची में अपना नाम जुड़वाने के लिए संघर्ष करना पड़ा है।

दिल्ली में तो निकट भविष्य में कोई चुनाव भी नहीं होना है, फिर भी मतदाताओं की संख्या 1.45 करोड़ से घटकर ड्राफ्ट लिस्ट में 97.53 लाख रह गई है। 33 लाख मतदाताओं को उन कारणों से नोटिस मिले, जिन्हें निर्वाचन आयोग ने 'तार्किक विसंगति' कहा।

इस पर सुप्रीम कोर्ट ने भी सवाल उठाया कि क्या ये नोटिस मशीनों से तैयार किए गए थे? बंगाल में तो नाम या उम्र में मेल न होने के चलते मतदाता सूचियों से 27.16 लाख नाम हटा दिए गए। निर्वाचन आयोग की इस कवायद के खिलाफ 22 लाख अपीलें दायर किए जाने की खबर है। अब तक केवल 1 लाख अपीलों का निपटारा हुआ है, जिनमें से 93 प्रतिशत मामलों में संबंधित लोगों को वैध मतदाता पाया गया।

आखिर ऐसी किसी व्यवस्था को कुशल कैसे माना जा सकता है, जो नागरिकों को अपने मतदान के अधिकार के लिए कानूनी पचड़ों से गुजरने पर मजबूर करती है? मतदान एक संवैधानिक अधिकार है, कोई विशेष सुविधा नहीं।

चुनाव आयोग का काम और वास्तव में उसका कर्तव्य तो यही है कि वह ज्यादा से ज्यादा लोगों को चुनाव में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करे। इस पूरी कवायद की मूल भावना समावेशी ही होनी चाहिए। इस पर सवाल उठना शुभ संकेत नहीं है।



कवायद की मूल भावना समावेशी ही होनी चाहिए। लेकिन एसआईआर की अपनी व्याख्या के तहत चुनाव आयोग ने इस भावना को उलट दिया और नागरिकों पर अपनी नागरिकता साबित करने की जिम्मेदारी डाल दी।

अगर एसआईआर का मकसद भारत में अवैध रूप से रह रहे लोगों को मतदाता सूची से बाहर करना है, तो निश्चित रूप से इसका सबूत जुटाने की जिम्मेदारी राज्यसत्ता और उसकी सुरक्षा एजेंसियों की होनी चाहिए। फिर अचानक नागरिकों से नागरिकता साबित

उसकी उम्र पूछें, तो अक्सर उन्हें भी ठीक-ठीक पता नहीं होता।

उनके पास जन्म प्रमाणपत्र जैसा कोई दस्तावेज सहेजकर रखा हुआ नहीं होता। ऐसे में एसआईआर को लेकर मौजूदा बहस के केंद्र में यही सवाल है कि नागरिकता साबित करने का बोझ किस पर होना चाहिए।

एसआईआर प्रक्रिया के समर्थकों ने विपक्ष के इस दावे को चुनौती देने के लिए चुनाव आयोग के आंकड़ों का हवाला दिया है कि देशभर में 13 करोड़ से अधिक

सैयद अता हसनैन

दशकों से सिलीगुड़ी कॉरिडोर के 'चिकन नेक' को लेकर भारत की सुरक्षा संबंधी बहस अंदेशों के इर्द-गिर्द घूमती रही है। लेकिन खतरों की प्रकृति भी अब बदल गई है। हाइब्रिड संघर्षों के दौर में हमारे किसी प्रतिद्वंद्वी के लिए अब इस कॉरिडोर पर कब्जा करना या उसे सीधे क्षति पहुंचाना जरूरी नहीं रह गया है। केवल व्यवधान पैदा करना ही रणनीतिक असर पैदा कर सकता है।

सिलीगुड़ी कॉरिडोर के सबसे संकरे हिस्से में नेपाल और बांग्लादेश के बीच की दूरी महज 20-22 किलोमीटर है। इसके उत्तर-पूर्व में भूटान है। उससे आगे उत्तर में सिक्किम, चुम्बी घाटी, डोकलाम हैं। भारत के मुख्य भूभाग को पूर्वोत्तर से जोड़ने वाली सड़कें, रेलवे, पाइप लाइन, दूरसंचार नेटवर्क, सैन्य रसद इसी सीमित भूगोल में आकर सिमट जाते हैं। यही वजह है कि यह कॉरिडोर इतना संवेदनशील है।

2020 के बाद रिश्तों में सुधार के बावजूद चीन अब भी हमारे लिए चुनौती बना हुआ है। 2017 में डोकलाम में हुआ टकराव इस बात को दिखा चुका है कि चुम्बी घाटी और भूटान से जुड़े घटनाक्रम भारत के लिए क्यों महत्वपूर्ण हैं। हालांकि, नक्शे इस संवेदनशीलता को वास्तविकता से ज्यादा बढ़ा-चढ़ाकर दिखा सकते हैं।

उस क्षेत्र में किसी भी सैन्य आक्रामकता को कठिन भूभाग, भारतीय सेना की मजबूत तैनाती और संकरी चुम्बी

घाटी का सामना करना पड़ेगा। भारत ने कॉरिडोर और उसके दोनों छोरों के आसपास भी अपनी सैन्य क्षमता मजबूत की है। यह कॉरिडोर संवेदनशील जरूर है, लेकिन निश्चित रूप से असुरक्षित नहीं है। सबसे तात्कालिक चुनौती खतरों के

भारत के पूर्व में बदले राजनीतिक

माहौल (विशेषकर बांग्लादेश में) ने एक और पहलू जोड़ दिया है, लेकिन इसे सावधानी से समझने की जरूरत है। किसी देश में राजनीतिक बदलाव या द्विपक्षीय संबंधों में गिरावट का यह मतलब नहीं होता

इसलिए सीमाओं पर पाबंदी का मतलब केवल अवैध तरीके से सीमा पार करने वालों को रोकना नहीं है। नेपाल, भूटान और बांग्लादेश के साथ भारत की सीमाओं की परिस्थितियां अलग-अलग हैं। वैध आवाजाही, आर्थिक कारणों से होने

इसलिए इन जिलों में पुलिस व्यवस्था, खुफिया एजेंसियों के बीच समन्वय, अवैध नेटवर्कों पर निगरानी और विकास से जुड़े कदमों का असर बिहार की सीमाओं से कहीं आगे तक पड़ता है। इसका यही मतलब है कि सिलीगुड़ी कॉरिडोर की रणनीतिक गहराई उससे सटे बिहार के इलाकों तक फैली हुई है।

नशीले पदार्थों और हथियारों की तस्करी इस चुनौती में एक और आयाम जोड़ती है। तस्करी के नेटवर्क परिवहन के साधन, सुरक्षित ठिकाने, वित्तीय चैनल, जाली दस्तावेज और सीमा निगरानी से जुड़ी जानकारी जुटा लेते हैं। सामान्य परिस्थितियों में ये कानून-व्यवस्था से जुड़ी समस्याएं हैं।

लेकिन संकट की स्थिति में यही ढांचा हथियारों, विस्फोटकों, शत्रुतापूर्ण तत्वों या खुफिया सामग्री को एक से दूसरी जगह पहुंचाने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। सैन्य प्रकृति के खतरे अक्सर गैर-सैन्य नेटवर्कों के सहारे आगे बढ़ते हैं। यही वजह है कि ऐसे इलाके में पुलिस की भूमिका बेहद महत्वपूर्ण है। खुफिया सूचनाओं को एक-दूसरे से जोड़ना भी इतना ही जरूरी है।

सिलीगुड़ी कॉरिडोर को सुरक्षित रखने का मतलब केवल इतना नहीं है कि दुश्मन को 'चिकन नेक' तक पहुंचने से रोका जाए। असली कसौटी है पूर्वोत्तर को देश के बाकी हिस्सों से जोड़े रखना। कॉरिडोर तभी सुरक्षित होगा, जब उसका भूगोल उसकी कमजोरी में न बदला जा सके।

हमारी सीमाओं पर खतरे कई तरह से सामने आ सकते हैं!



लगातार बढ़ते दायरे की है। किसी बड़े टकराव के दौरान रेलवे का कोई पुल निष्क्रिय हो जाना, दूरसंचार सेवाओं में बाधा आना, ईंधन की आवाजाही प्रभावित होना, महत्वपूर्ण प्रतिष्ठानों को निशाना बनाने के लिए ड्रोन का इस्तेमाल या कई जगहों पर एक साथ की गई सुनियोजित तोड़फोड़-इनमें से किसी का भी असर तात्कालिक क्षति से कहीं ज्यादा बढ़ा हो सकता है। साइबर हमले सेवाओं को बाधित कर सकते हैं, गलत सूचनाएं फैला सकते हैं और लोगों में चिंता पैदा कर सकते हैं।

कि पड़ोसी देश भारत का विरोधी बन गया है।

चिंता पारंपरिक सैन्य कार्रवाई की तुलना में इस संभावना को लेकर अधिक है कि शत्रुतापूर्ण ताकतें अलग-अलग स्तर पर स्थानीय सहयोग या मिलीभगत के साथ किसी देश के भूभाग, नेटवर्क या स्थानीय कमजोरियों का फायदा उठा सकती हैं।

चिंता का विषय बन जाती है, जब जाली दस्तावेजों, आपराधिक नेटवर्कों या शत्रुतापूर्ण खुफिया एजेंसियों द्वारा उसका फायदा उठाया जाए।

यह बिहार के लिए भी मायने रखता है। किशनगंज, अररिया और पूर्णिया इस कॉरिडोर से सटे तत्काल प्रभाव वाले इलाके और व्यापक आवागमन क्षेत्र का हिस्सा हैं।

वाला माइग्रेशन, अवैध इमिग्रेशन और शत्रुतापूर्ण घुसपैठ- इन सभी को एक ही श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। रणनीतिक रूप से महत्वपूर्ण क्षेत्र में लोगों की बेरोकटोक आवाजाही तब

विरोधाभासी चरित्र से अमेरिका पर भरोसा कठघरे में!

ललित गर्ग

दुनिया की महाशक्ति होने का अर्थ यह नहीं कि कोई राष्ट्र अपनी ताकत के मद में चूर होकर पूरी दुनिया को अपनी उंगलियों पर नचाने लगे। शक्ति का वास्तविक मूल्य उसकी जिम्मेदारी, न्यायप्रियता और विश्वसनीयता से निर्धारित होता है, न कि इस बात से कि वह कितने देशों को धमका सकता है। दुर्भाग्य से अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप की नीतियों में शक्ति के साथ-साथ मनमानी का जो प्रदर्शन दिखाई दे रहा है, उसने अंतरराष्ट्रीय राजनीति के सामने एक गंभीर प्रश्न खड़ा कर दिया है—क्या विश्व व्यवस्था नियमों और सिद्धांतों से चलेगी अथवा शक्तिशाली राष्ट्रों की, मनमानी, सुविधाओं और स्वार्थों से? रूस से डीजल खरीदने के ट्रंप के ताजा फैसले ने इस प्रश्न को और प्रासंगिक बना दिया है। 9 अक्टूबर 2026 को ट्रंप ने रूसी राष्ट्रपति व्लादिमीर पुतिन से बातचीत के बाद घोषणा की कि रूस अमेरिकी और वैश्विक बाजारों के लिए तत्काल तीन लाख टन से अधिक डीजल उपलब्ध कराएगा। इसके बाद नवंबर में पांच लाख टन और आगे दस लाख टन की आपूर्ति की भी घोषणा की गई। अमेरिकी प्रशासन ने रूसी डीजल के आयात पर प्रतिबंधों में अस्थायी छूट भी दी। इस घटनाक्रम की पुष्टि अंतरराष्ट्रीय समाचार एजेंसियों ने की है।

रूस के दरवाजे पर

विडंबना देखिए कि यही अमेरिका कुछ समय पहले रूस से तेल खरीदने वाले देशों को कठघरे में खड़ा कर रहा था। भारत पर रूसी तेल खरीदने के कारण 25 प्रतिशत अतिरिक्त टैरिफ लगाने का निर्णय लिया गया था और रूस के ऊर्जा व्यापार से जुड़े देशों पर और कठोर शुल्क लगाने की व्यवस्था भी सामने आई। अमेरिकी कांग्रेस द्वारा पारित लिंडसे ओ. ग्राहम सैनसिटोनिंग रसिया एण्ड ईरान ऐक्ट ऑफ 2026 ने रूस से ऊर्जा खरीदने वाले देशों पर अतिरिक्त टैरिफ लगाने की संभावनाओं को कानूनी आधार दिया। अब वही अमेरिका अपनी घरेलू ऊर्जा जरूरतों और बढ़ती कीमतों के दबाव में रूसी डीजल के लिए रास्ता खोल रहा है। प्रश्न यह नहीं है कि अमेरिका को अपनी जनता के हित में ईंधन खरीदना चाहिए या नहीं। प्रत्येक संप्रभु राष्ट्र को अपनी ऊर्जा जरूरतें पूरी करने का अधिकार है।

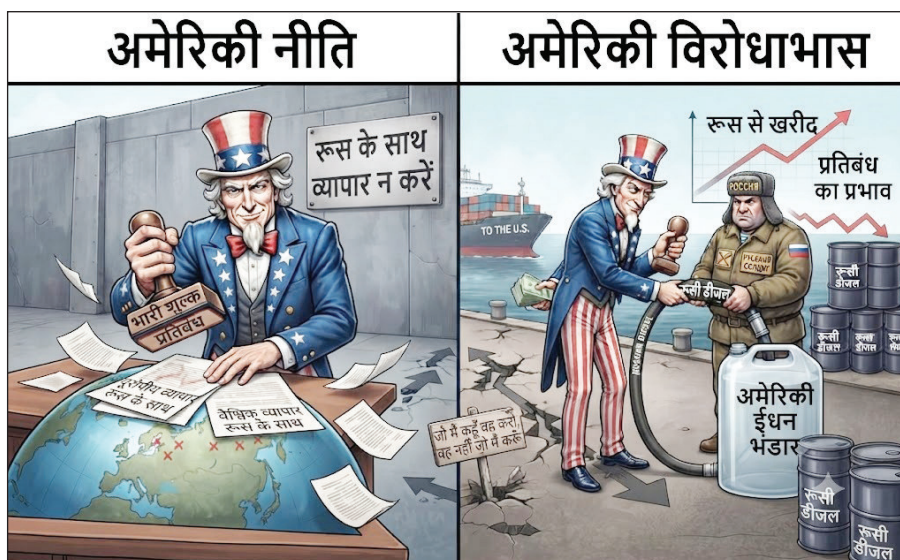
प्रश्न यह है कि जिस निर्णय को भारत जैसे देशों के लिए नैतिक अपराध और रूस की युद्ध मशीनरी को आर्थिक सहायता देने वाला कदम बताया गया, वही निर्णय अमेरिका के लिए राष्ट्रीय आवश्यकता कैसे बन गया? क्या नैतिकता की परिभाषा राष्ट्र की सीमा बदलते ही बदल जाती है? क्या अंतरराष्ट्रीय नियम केवल कमजोर और कम शक्तिशाली देशों के लिए हैं?

सबसे बड़ा विरोधाभास

अमेरिका की इस नीति का सबसे बड़ा विरोधाभास

यह है कि वह रूस से होने वाली ऊर्जा खरीद को यूक्रेन युद्ध के वित्तपोषण से जोड़कर देखता रहा है, लेकिन जब अपने देश में डीजल की कीमतें बढ़ीं और किसानों, ट्रक चालकों तथा उपभोक्ताओं पर आर्थिक दबाव बढ़ा, तो उसी रूस से आपूर्ति लेने का निर्णय कर लिया। रॉयटर्स के अनुसार, अमेरिका में डीजल की कीमत 8 अक्टूबर को लगभग 6.28 डॉलर प्रति गैलन तक पहुंच गई थी। तीन नवंबर को होने वाले मध्यावधि चुनावों से पहले बढ़ती कीमतें ट्रंप प्रशासन के लिए राजनीतिक

ऐसे में तेल की खरीद केवल व्यापारिक सौदा नहीं, बल्कि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था, महंगाई, परिवहन, कृषि, उद्योग और आम नागरिक के जीवन से जुड़ा प्रश्न है। वैश्विक बाजार में तेल महंगा होता है तो उसका असर पेट्रोल-डीजल की कीमतों से लेकर खाद्य पदार्थों और माल ढुलाई तक दिखाई देता है। इसलिए भारत के लिए ऊर्जा सुरक्षा का अर्थ है कि उसे उपलब्धता, कीमत, आपूर्ति की स्थिरता और राष्ट्रीय हित को ध्यान में रखकर निर्णय लेने की स्वतंत्रता मिले।



चुनौती बन गई हैं। यहाँ अमेरिकी राष्ट्रपति की प्राथमिकताओं का अंतर साफ दिखाई देता है। जब भारत अपनी अर्थव्यवस्था, करोड़ों उपभोक्ताओं और ऊर्जा सुरक्षा को ध्यान में रखकर रूसी तेल खरीदता है, तो उसे अंतरराष्ट्रीय नैतिकता का पाठ पढ़ाया जाता है। लेकिन जब अमेरिकी मतदाता महंगे ईंधन से परेशान होते हैं, तब वही नैतिकता पीछे छूट जाती है और राष्ट्रीय हित सर्वोपरि हो जाता है। यह कैसी नीति है, जिसमें दूसरों के लिए सिद्धांत और अपने लिए सुविधानुसार अपवाद निर्धारित किए जाते हैं? दूसरों को उपदेश देना आसान है, लेकिन अपने आचरण को उन्हीं कसौटियों पर कसना कठिन।

स्वतंत्र नीति प्राथमिकता

हिंदी की एक लोकोक्ति है—'पर उपदेश कुशल बहुतेरे।' अमेरिका की मौजूदा नीति पर यह कहावत सटीक बैठती है। जो देश पूरी दुनिया को नियमों के पालन की सीख देता है, उसे सबसे पहले अपने व्यवहार में निरंतरता और पारदर्शिता दिखानी चाहिए। अंतरराष्ट्रीय राजनीति में दोहरे मापदंड केवल विरोधियों को मजबूत नहीं करते, बल्कि मित्र देशों के विश्वास को भी कमजोर कर देते हैं। भारत के संदर्भ में यह सवाल और महत्वपूर्ण हो जाता है। भारत अपनी जरूरत का बड़ा हिस्सा आयातित पेट्रोलियम पर निर्भर रहकर पूरा करता है।

अनैतिक अमेरिका

किसी महाशक्ति के दबाव में आकर अपने आर्थिक हितों की अनदेखी करना न तो व्यावहारिक होगा और न ही दूरदर्शितापूर्ण। यह भी समझना जरूरी है कि रूस से तेल खरीदने का समर्थन करने का अर्थ यूक्रेन में जारी युद्ध का समर्थन करना नहीं है। इसी प्रकार ऊर्जा व्यापार पर प्रतिबंध लगाने की आलोचना का अर्थ किसी देश की सैन्य कार्रवाई का बचाव करना भी नहीं है। अंतरराष्ट्रीय संबंधों में इन दोनों प्रश्नों को अलग-अलग समझना चाहिए। युद्ध को समाप्त करने, संप्रभुता की रक्षा करने और नागरिकों की सुरक्षा सुनिश्चित करने के प्रयास आवश्यक हैं, लेकिन आर्थिक प्रतिबंधों की प्रभावशीलता और उनके मानदंडों पर भी निष्पक्ष विचार होना चाहिए। यदि किसी देश की ऊर्जा खरीद को युद्ध के वित्तपोषण से जोड़कर देखा जाता है, तो यही कसौटी सभी देशों पर समान रूप से लागू होनी चाहिए। केवल विरोधी या कमजोर देश पर प्रतिबंध लगाना और अपने संकट के समय उसी स्रोत से आपूर्ति लेना उस नैतिक आधार को कमजोर करता है, जिस पर प्रतिबंधों को उचित ठहराया जाता है।

जेलेन्स्की नाराज

ट्रंप के फैसले ने यूक्रेन के राष्ट्रपति जेलेन्स्की की

नाराजगी भी बढ़ाई है। जेलेन्स्की ने इस कदम को रूस के लिए लाभकारी बताते हुए चिंता जताई कि इससे पुतिन को युद्ध जारी रखने के लिए आर्थिक संसाधन मिल सकते हैं। अमेरिकी सांसदों में भी इस निर्णय की आलोचना हुई है। ट्रंप का इसके बाद जेलेन्स्की को यूक्रेन का नेतृत्व बदलने की सलाह देना मामले को और गंभीर बनाता है। किसी संप्रभु देश का राष्ट्रपति कौन होगा, यह निर्णय उस देश के नागरिकों और उसकी संवैधानिक व्यवस्था का विषय है। यदि अमेरिका स्वयं को लोकतंत्र और स्वतंत्रता का समर्थक बताता है, तो उसे दूसरे देश की राजनीतिक संप्रभुता का सम्मान भी करना चाहिए। शांति की पहल का स्वागत होना चाहिए, लेकिन शांति के नाम पर युद्ध से पीड़ित देश पर ही असंगत दबाव डालना न्यायसंगत नहीं कहा जा सकता। वास्तव में इस घटनाक्रम से दुनिया के सामने एक बड़ा सबक उभरता है। महाशक्ति होना और विश्वसनीय शक्ति होना दो अलग-अलग बातें हैं। पहली ताकत आर्थिक, सैन्य और राजनीतिक संसाधनों से मिलती है, दूसरी निष्पक्षता, वचनबद्धता और जिम्मेदार आचरण से अर्जित होती है।

नीतियों में असंगत बदलाव

अमेरिका के पास दुनिया की सबसे प्रभावशाली अर्थव्यवस्थाओं और शक्तिशाली संस्थाओं में से एक होने का गौरव है, लेकिन उसकी नीतियों में बार-बार होने वाले असंगत बदलाव उसके नेतृत्व की विश्वसनीयता को नुकसान पहुंचा सकते हैं। 'जैसी करनी वैसी भरनी' की कहावत यहाँ केवल किसी व्यक्ति पर लागू नहीं होती, बल्कि राष्ट्रों की नीतियों पर भी लागू होती है। यदि अमेरिका अपने आर्थिक हितों के लिए प्रतिबंधों में छूट दे सकता है, तो उसे यह स्वीकार करना चाहिए कि दूसरे देशों को भी अपनी ऊर्जा सुरक्षा और राष्ट्रीय हितों के अनुसार निर्णय लेने का अधिकार है। यदि उसे रूसी डीजल खरीदने की छूट उचित लगती है, तो भारत जैसे देशों की जरूरतों को भी उसी निष्पक्ष दृष्टि से देखने की अपेक्षा स्वाभाविक है। भारत को भी इस घटनाक्रम से सबक लेते हुए अपनी ऊर्जा सुरक्षा, आर्थिक आत्मनिर्भरता और रणनीतिक स्वायत्तता को और मजबूत करना चाहिए। अंतरराष्ट्रीय संबंधों में न अंधविरोध उचित है, न अंधसमर्थन, आवश्यक है कि प्रत्येक निर्णय का मूल्यांकन राष्ट्रीय हित, वैश्विक शांति और समान मानदंडों के आधार पर किया जाए। सच यही है कि ताकत से दुनिया को कुछ समय के लिए झुकाया जा सकता है, लेकिन भरोसा केवल न्यायपूर्ण आचरण से जीता जा सकता है। अमेरिका के सामने आज सबसे बड़ी चुनौती अपनी शक्ति का प्रदर्शन करना नहीं, बल्कि अपनी विश्वसनीयता को बचाना है। क्योंकि इतिहास में राष्ट्रों की पहचान केवल उनकी ताकत से नहीं, बल्कि इस बात से भी होती है कि उन्होंने अपनी ताकत का इस्तेमाल कितनी ईमानदारी और जिम्मेदारी से किया।

सऊदी के महंगे हथियारों पर हतियारों के सस्ते ड्रोन भारी: 15 लाख का ड्रोन रोकने में 30 करोड़ खर्च; यमन में जीत का रास्ता मुश्किल

सऊदी अरब ने अपनी सुरक्षा पर दशकों से अरबों डॉलर खर्च किए हैं। उसके पास आधुनिक फाइटर जेट हैं। मिसाइलों को हवा में नष्ट करने वाले महंगे सिस्टम भी हैं। सैन्य खर्च के मामले में वह दुनिया के शीर्ष 10 देशों में शामिल है।

हतियारों के पास सऊदी अरब जैसी बड़ी सेना और आधुनिक हथियार नहीं हैं। लेकिन उन्होंने सस्ते ड्रोन और कम ऊंचाई पर उड़ने वाली क्लरूज मिसाइलों को अपनी ताकत बना लिया है। इन हथियारों का पता लगाना और उन्हें हवा में ही नष्ट करना

मुश्किल होता है।

सऊदी अरब के लिए हतियारों के सस्ते ड्रोन रोकना महंगा सौदा साबित हो रहा है। करीब 15 लाख रुपए के एक ड्रोन को नष्ट करने के लिए 25 करोड़ रुपए से ज्यादा खर्च करने पड़ रहे हैं। हूती विद्रोही इसका फायदा उठाकर सऊदी अरब की महंगी सुरक्षा व्यवस्था के सामने चुनौती खड़ी कर रहे हैं।

महंगे हथियारों के सामने सस्ते ड्रोन की चुनौती

सऊदी अरब लंबे समय से अमेरिका और यूरोपीय देशों से आधुनिक और महंगे हथियार खरीदता रहा है। इनमें अत्याधुनिक फाइटर जेट, मिसाइल और एयर डिफेंस सिस्टम शामिल हैं। लेकिन हतियारों के हमले के आगे ये सब बेअसर हैं।

वे कम कीमत वाले ड्रोन और क्लरूज मिसाइलों का इस्तेमाल करते हैं। ये हथियार कई बार जमीन के काफी करीब उड़ते हैं। ऐसे में रडार के लिए उनका पता लगाना मुश्किल हो जाता है।

सऊदी अरब को इन हमलों को रोकने

के लिए कई बार बेहद महंगी इंटरसेप्टर मिसाइलों का इस्तेमाल करना पड़ता है। एक पैट्रियट इंटरसेप्टर मिसाइल की कीमत करीब 30 करोड़ होती है। इसके मुकाबले एक ड्रोन की कीमत महज 15 लाख होती है। इसका नुकसान सिर्फ पैसों तक सीमित नहीं है। महंगी मिसाइलों का भंडार भी सीमित होता है।

यूक्रेन और ईरान जंग से इंटरसेप्टर मिसाइल की मांग बढ़ी

यूक्रेन और मिडिल ईस्ट में चल रहे युद्धों के कारण दुनियाभर में मिसाइल इंटरसेप्टर की मांग बढ़ी है। ऐसे में सऊदी अरब के लिए लंबे समय तक इसी तरह हमलों को रोकते रहना मुश्किल हो सकता है।

हतियारों की ताकत भी पहले जैसी नहीं रही। उन्होंने अपने हथियारों के भंडार को बढ़ाया है। अब वे कुछ हथियार खुद भी बनाने लगे हैं। संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद की एक रिपोर्ट में इसका जिक्र भी किया गया है कि अब हूती ईरान के भरोसे नहीं रहे।

अभिनय की आग में तपा असाधारण कलाकार

महान कलाकार को 'नवयुग' की श्रद्धांजलि

भारतीय सिनेमा में कुछ कलाकार ऐसे होते हैं, जिन्हें केवल अभिनेता कहना उनके व्यक्तित्व को सीमित कर देना है। नाना पाटेकर उन्हीं विरल कलाकारों में से एक थे। वे अभिनेता थे, रंगकर्मी थे, निर्देशक थे, लेखक थे, सामाजिक सरोकारों से जुड़े संवेदनशील नागरिक थे और भारतीय सेना के प्रति गहरे सम्मान एवं समर्पण का उदाहरण भी थे। उनकी आवाज में खुरदुरापन था, संवादों में धार थी, आंखों में आक्रोश और चेहरे पर जीवन के संघर्षों की सच्चाई। उन्होंने अभिनय को सजावटी कला नहीं बनाया, बल्कि उसे यथार्थ जीवन के अनुभवों, पीड़ा, संघर्ष, संवेदना और सामाजिक चेतना से जोड़ा। 8 अक्टूबर 2026 को 75 वर्ष की उम्र में उनके निधन के साथ भारतीय सिनेमा ने एक ऐसा कलाकार खो दिया, जिसकी कोई दूसरी प्रतिकृति संभव नहीं है। वे अभिनय जगत के लिये एक अपरिहार्य नाम थे और ज्यादातर फिल्मप्रेमियों के लिये अजीज भी थे।

नाना की फिल्म-प्रतिभा हमें चौंकाती रही है, रोमांचित करती रही है, उकसाती रही है, क्योंकि उनकी फिल्मों की सबसे बड़ी खूबी यह थी कि वे आम लोगों के जीवन की सच्चाई और उनके संघर्षों को प्रामाणिकता एवं जीवंतता के साथ प्रस्तुत करते रहे हैं। भारतीय जिंदगी के रंग बेशुमार हैं, कला-संस्कृति की अविस्मरणीय धाराएं हैं, अनूठा एवं बेजोड़ इतिहास और उसकी कहानियां भी अनंत-अथाह। नाना का फिल्मी-युग भारत की खिड़की से विश्व को देखने एवं विश्व को भारत दिखाने की पहल का एक स्वर्णिम युग है। उन्होंने अपने किरदार से राष्ट्रीयता की भावना को भी सुदृढ़ किया। नाना का सफरनामा पूरी तरह मायूस हो चुके किसी भी इंसान के लिये प्रेरणादायी अध्याय भी है, उत्साह की मिसाल भी है। नाना पाटेकर का वास्तविक नाम विश्वनाथ पाटेकर था। उनका जन्म 1 जनवरी 1951 को महाराष्ट्र के मुरुड-जंजीरा में हुआ। बचपन सामान्य था, लेकिन किशोरावस्था में ही परिवार आर्थिक संकट में घिर गया। पिता का कारोबार डूब गया और महज 13 वर्ष की उम्र में नाना को परिवार की मदद के लिए काम करना पड़ा। वे स्कूल के बाद मुंबई में फिल्म पोस्टर रंगते थे और करीब 35 रुपये महीने कमाते थे। काम पर जाने के लिए उन्हें कई किलोमीटर पैदल चलना पड़ता था और बदले में एक वक्त का भोजन भी मिलता था। गरीबी और अभाव ने उन्हें तोड़ा नहीं, बल्कि भीतर से गढ़ा। बाद में उन्होंने स्वयं स्वीकार किया कि भूख और अपमान ने उन्हें जीवन को समझना सिखाया।

कला नाना के जीवन में आरंभ से थी। उन्होंने सर जे.जे. इंस्टीट्यूट ऑफ एप्लाइड आर्ट में शिक्षा ली और व्यावसायिक कलाकार के रूप में काम किया। लेकिन उनका वास्तविक विद्यालय था रंगमंच। मराठी रंगमंच की प्रख्यात निर्देशिका विजया मेहता के मार्गदर्शन में उन्होंने अभिनय की बारीकियां सीखीं। हमीदाबाईची कोठी जैसे नाटकों ने उन्हें गंभीर रंगकर्मी के रूप में पहचान दी। रंगमंच ने उन्हें संवाद बोलना ही नहीं, बल्कि संवाद के पीछे छिपी भावना को जीना सिखाया। नाना के करियर की शुरुआत फिल्म 'गमन' से हुई थी लेकिन इंडस्ट्री में उन्हें फिल्म 'परिंदा' से नोटिस किया गया जिसमें उन्होंने खलनायक की भूमिका अदा की थी। इस फिल्म में उनके अभिनय के लिए उन्हें सर्वश्रेष्ठ सहायक अभिनेता का राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार और सर्वश्रेष्ठ सहायक अभिनेता का फिल्मफेयर पुरस्कार भी दिया गया। इसके बाद उन्होंने कई अच्छी फिल्मों में काम किया और अपने अभिनय का लोहा मनवाया। क्रांतिवीर, खामोशी, यशवंत, अब तक

छप्पन, अपहरण, वेलकम, राजनीति उनकी प्रमुख फिल्मों में से एक हैं। शुरुआती वर्षों की निराशाओं के बावजूद उन्होंने अपनी राह नहीं छोड़ी। अंकुश

नाना पाटेकर



और सलाम बॉम्बे! जैसी फिल्मों ने उनकी प्रतिभा को पहचान दिलाई।

इसके बाद नाना पाटेकर ने एक के बाद एक ऐसे किरदार निभाए, जिन्होंने हिंदी सिनेमा में अभिनय की एक अलग भाषा निर्मित की। 'अंगार' में उनका नकारात्मक किरदार, 'तिरंगा' में देशभक्ति से ओतप्रोत शिवाजी राव वागले, 'क्रांतिवीर' में प्रखर और विद्रोही प्रताप नारायण तिलक, 'अग्निसाक्षी' में जटिल मानसिकता वाला पात्र और 'खामोशी-द म्यूजिकल' में संवेदनशील पिता-हर भूमिका में वे बिल्कुल अलग दिखाई दिए। क्रांतिवीर के लिए उन्हें सर्वश्रेष्ठ अभिनेता का राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार मिला, जबकि अग्निसाक्षी के लिए फिर राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित हुए। इस तरह वे तीन राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार पाने वाले विशिष्ट अभिनेताओं में शामिल हुए। नाना की अभिनयशैली का सबसे बड़ा गुण था स्वाभाविकता के भीतर तीव्रता। वे संवाद को केवल बोलते नहीं थे, उसे जीते थे। उनकी आवाज कभी धीमी फुसफुसाहट बन जाती तो कभी विस्फोट की तरह फूटती। उनका चेहरा, आंखों की हरकत, हाथों का इस्तेमाल, अचानक आने वाला ठहराव और फिर तेज गति से निकलते संवाद-इन सबका अपना नाटकीय व्याकरण था। उनकी संवाद-अदायगी इतनी विशिष्ट थी कि साधारण वाक्य भी उनके मुंह से निकलकर यादगार बन जाता था। वे संवादों को अभिनय से बड़ा नहीं होने देते थे, बल्कि अभिनय के माध्यम से संवाद को अर्थ देते थे।

नाना की लोकप्रियता का एक अलग अध्याय 'वेलकम' है। गंभीर और आक्रामक भूमिकाओं के लिए पहचाने जाने वाले नाना ने उदय शेट्टी के रूप में ऐसी कॉमेडी की कि नई पीढ़ी भी उनकी मुरीद हो गई। उनका कंट्रोल, उदय, कंट्रोल! जैसे संवाद और चेहरे के हावभाव आज भी लोकप्रिय संस्कृति का हिस्सा हैं। यह उनकी अभिनय-बहुमुखी प्रतिभा का प्रमाण था कि जो कलाकार परिंदा और क्रांतिवीर में दर्शकों को भीतर तक हिला सकता था, वही वेलकम में उन्हें खुलकर हंसा भी सकता था। 2000 के दशक में 'अब तक छप्पन', अपहरण, शक्ति-द पावर, राजनीति जैसी फिल्मों में उन्होंने उम्र और अनुभव के साथ अपने अभिनय को और गहरा किया। अब तक छप्पन के पुलिस अधिकारी का किरदार हो या राजनीति में राजनीतिक संघर्षों के बीच खड़ा चरित्र-नाना हमेशा चरित्र की भीतरी

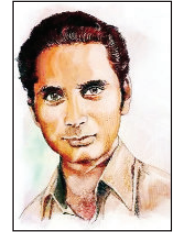
बेचैनी को सामने लाते थे। मराठी सिनेमा में भी उन्होंने अपनी जड़ों को नहीं छोड़ा। 'नटसम्राट' (2016) में रंगमंच के दिग्गज कलाकार की भूमिका उनके करियर की सबसे मार्मिक प्रस्तुतियों में गिनी जाती है।

नाना केवल अभिनेता बनकर संतुष्ट नहीं थे। 'प्रहार-द फाइनल अटैक' का निर्देशन करके उन्होंने यह साबित किया कि उनके भीतर निर्देशक और लेखक भी मौजूद हैं। इस फिल्म की तैयारी के दौरान उन्होंने सेना का कठोर प्रशिक्षण लिया। आगे चलकर उनका भारतीय सेना से संबंध वास्तविक जीवन का हिस्सा बन गया। वे टेरिटरियल आर्मी से जुड़े और लेफ्टिनेंट कर्नल के मानद पद तक पहुंचे। 1999 के कारगिल युद्ध के दौरान भी वे सैनिकों के साथ रहे। पर्दे पर देशभक्ति का अभिनय करने वाले इस कलाकार ने वास्तविक जीवन में भी सैनिकों के बीच जाकर देश के प्रति अपना सम्मान व्यक्त किया। उनकी राष्ट्रीयता किसी नारे की तरह नहीं थी, उसमें कर्तव्य और संवेदना थी। तिरंगा, प्रहार और क्रांतिवीर जैसी फिल्मों में देश, समाज और नागरिक जिम्मेदारी के प्रश्न दिखाई देते हैं। वे देशभक्ति को केवल सीमा पर लड़ने वाले सैनिक की भावना तक सीमित नहीं मानते थे, बल्कि ईमानदारी से अपना काम करना, कमजोर के साथ खड़ा होना और समाज के प्रति जिम्मेदारी निभाना भी राष्ट्रसेवा का हिस्सा मानते थे। उनके व्यक्तित्व की दूसरी बड़ी विशेषता थी सादगी और सामाजिक प्रतिबद्धता। महाराष्ट्र के किसानों की समस्याओं और ग्रामीण संकट से वे गहराई से जुड़े। 2015 में उन्होंने अभिनेता मकरंद अनासपुरे के साथ नाम फाउंडेशन की स्थापना की, जिसका उद्देश्य किसानों और सूखा प्रभावित ग्रामीण परिवारों की सहायता करना था। उन्होंने राहत एवं सामाजिक कार्यों में आर्थिक सहयोग भी किया। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने दिग्गज अभिनेता नाना पाटेकर के निधन पर शोक व्यक्त किया कि वे एक सच्चे 'क्रांतिवीर' थे जिन्होंने सामाजिक बुराइयों के खिलाफ लड़ाई लड़ी। उनकी खामोशी उतनी ही असरदार थी जितनी उनकी दमदार आवाज। उन्होंने हमेशा देश-विरोधी तत्वों पर लगाम लगाने की वकालत की।

नाना पाटेकर की सबसे बड़ी खूबी यह थी कि उन्होंने स्टार बनने की कोशिश नहीं की, कलाकार बने रहे। वे ग्लैमर की दुनिया में रहते हुए भी अपनी जड़ों से कटे नहीं। गरीबी ने उन्हें संवेदनशील बनाया, रंगमंच ने अनुशासन दिया, फिल्मों ने व्यापक पहचान दी, सेना ने राष्ट्रबोध को मजबूत किया और सामाजिक कार्यों ने उनके भीतर के मनुष्य को जीवित रखा। उनके अभिनय की विरासत केवल पुरस्कारों में नहीं, उन पात्रों में है जिन्हें उन्होंने अमर कर दिया। परिंदा का अन्ना, क्रांतिवीर का प्रताप, तिरंगा का शिवाजी राव, अब तक छप्पन का पुलिस अधिकारी, नटसम्राट का गणपत बेलवलकर और वेलकम का उदय शेट्टी-ये सभी नाना के अलग-अलग चेहरे हैं, लेकिन इनके पीछे एक ही कलाकार है, जो अभिनय को दिखाता नहीं था, संवेदनशीलता के साथ जीता था। नाना पाटेकर का जीवन हमें यह संदेश देता है कि प्रतिभा अवसर की मोहताज नहीं होती। जिस किशोर ने कभी 35 रुपये महीने के लिए फिल्म पोस्टर रंगे थे, वही आगे चलकर तीन राष्ट्रीय पुरस्कारों और पद्मश्री से सम्मानित हुआ। भारत ने एक अभिनेता खोया है, लेकिन उसकी कला, आवाज, संवाद, संघर्ष और संवेदनशील नागरिक की छवि लंबे समय तक जीवित रहेगी। नाना पाटेकर की सबसे बड़ी फिल्म शायद उनका अपना जीवन था-संघर्ष से शुरू हुई, संवेदना से समृद्ध हुई और कर्म की सच्चाई पर समाप्त हुई।

सबसे खतरनाक

अवतार सिंह सिद्धू 'पाश'



मेहनत की लूट सबसे खतरनाक नहीं होती पुलिस की मार सबसे खतरनाक नहीं होती गद्दारी-लोभ की मुट्ठी सबसे खतरनाक नहीं होती बैठे-बिठाए पकड़े जाना बुरा तो है सहमी-सी चुप्पी में जकड़े जाना बुरा तो है पर सबसे खतरनाक नहीं होता कपट के शोर में सही होते हुए भी दब जाना बुरा तो है किसी जुगनू की लौ में पढ़ना बुरा तो है मुट्ठियां भींचकर बस वक्त निकाल लेना बुरा तो है सबसे खतरनाक नहीं होता सबसे खतरनाक होता है मुर्दा शांति से भर जाना न होना तड़प का सब सहन कर जाना घर से निकलना काम पर और काम से लौटकर घर आना सबसे खतरनाक होता है हमारे सपनों का मर जाना सबसे खतरनाक वह घड़ी होती है आपकी कलाई पर चलती हुई भी जो आपकी निगाह में रुकी होती है सबसे खतरनाक वह आंख होती है जो सब कुछ देखती हुई भी जमी बर्फ होती है जिसकी नजर दुनिया को मुहब्बत से चूमना भूल जाती है जो चीजों से उठती अंधेपन की भाप पर ढुलक जाती है जो रोजमर्रा के क्रम को पीती हुई एक लक्ष्यहीन दोहराव के उलटफेर में खो जाती है सबसे खतरनाक वह चांद होता है जो हर हत्याकांड के बाद वीरान हुए आगनों में चढ़ता है पर आपकी आंखों को मिर्चों की तरह नहीं गड़ता है सबसे खतरनाक वह गीत होता है आपके कानों तक पहुंचने के लिए, जो मरसिए पढ़ता है आतंकित लोगों के दरवाजों पर जो गुंडे की तरह अकड़ता है सबसे खतरनाक वह रात होती है जो जिंदादिल रूह के आसमानों पर ढलती है जिसमें सिर्फ उल्लू बोलते और हुंवा-हुंवा करते गीदड़ हमेशा के अंधेरे बंद दरवाजों-चौखटों पर चिपक जाते हैं सबसे खतरनाक वह दिशा होती है जिसमें आत्मा का सूरज डूब जाए और उसकी मुर्दा धूप का कोई टुकड़ा आपके जिस्म के पूरब में चुभ जाए मेहनत की लूट सबसे खतरनाक नहीं होती पुलिस की मार सबसे खतरनाक नहीं होती गद्दारी-लोभ की मुट्ठी सबसे खतरनाक नहीं होती।

ब्रिटेन के पूर्व प्रधानमंत्री ऋषि सुनक की भारत को खरी-खरी

चीन एक महाशक्ति और भारत एक आकांक्षी देश!

नई दिल्ली से 'विनोद जोशी' की रिपोर्ट



नई दिल्ली। अभी हाल में ब्लूमबर्ग न्यू इकोनॉमिक फोरम का आयोजन नई दिल्ली में हुआ। भारत के प्रधानमंत्री ने उद्घाटन करते हुए अपने स्वभाव के अनुरूप भाषण देते हुए बड़ी-बड़ी बातें कर यह जताने का प्रयास किया कि अब हम ही अगली महाशक्ति हैं। हमारे अहसान दुनिया पर हैं लेकिन हमने न ऐसा कहा न ही कोई रॉयल्टी मांगी।

इसी रौ में वह यह भी बोल गए कि दुनिया के 100 देशों को हमने कोविड महामारी में वैक्सीन दी। उनके भाषण लिखने वाले विद्वानों को शायद यह भी नहीं पता कि वैक्सीन आपके यहां सिर्फ जॉब ऑर्डरसे बनी थी, इसको बनाने वाले ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी और एस्ट्राजेनेका थीं। अदार पूनावाला की सीरम इंस्टीट्यूट ऑफ इंडिया विश्व की सबसे ज्यादा वैक्सीन बनाने वाली फैक्ट्री आज की नहीं है, बल्कि इस स्थान पर पिछले 55-60 सालों से बैठी है। उसने एस्ट्राजेनेका से उत्पादन लाइसेंस लेकर इसे बनाया था, न कि यह भारत की खोज थी। अगर इस विकास का श्रेय किसी को जाता है तो वे पंडित जवाहरलाल नेहरू थे, न कि वर्तमान सत्तासीन वर्ग। खैर बात इससे आगे..

ऋषि सुनक की खरी-खरी

ऋषि सुनक नई दिल्ली में भारत के व्यावसायिक दिग्गजों के सामने खड़े हुए और उन्होंने वह बात साफ-साफ कह दी जिसे सब दबी जुबान में मानते हैं - चीन अब संयुक्त राज्य अमेरिका का समकक्ष प्रतिद्वंद्वी है, भारत नहीं। सालों से, 2018 में अमेरिकी-चीन व्यापार युद्ध गरमाने के बाद से, भारतीय अभिजात वर्ग अपनी छाती पीट रहा था और भारत को अगली आर्थिक महाशक्ति घोषित कर रहा था। उन्होंने खुद को यह विश्वास दिलाया कि चूंकि अमेरिका ने चीन से दूरी बनाने (डिकपल) की कोशिश की, इसलिए भारत उसका स्वाभाविक विकल्प होगा। पश्चिमी थिंक टैंक और मीडिया ने इस कल्पना को हवा दी और भारत को चीन के प्रतिसंतुलन (काउंटरवेट) के रूप में पेश किया। लेकिन सुनक के शब्द चेहरे पर एक जोरदार तमाचे की तरह थे - दुनिया पहले ही बहुध्रुवीयता की ओर बढ़ चुकी है और भारत दो महाशक्तियों की शीर्ष मेज पर नहीं बैठा है।

बहुध्रुवीय यथार्थ

सुनक का यह बयान उस बात की पुष्टि करता है जिसे पश्चिमी दायरे से बाहर के कई लोग पहले से ही जानते हैं कि अमेरिकी नेतृत्व वाला आदेश समाप्त हो चुका है। ट्रंप इस पतन के कारण नहीं हैं - वह इसके लक्षण मात्र हैं। उनका उदय अमेरिका के अंतर्विरोधों को दर्शाता है - एक महाशक्ति जो कर्ज में डूबी है, घर

में बंटी हुई है और विदेश में बहुत अधिक फैली हुई है। ठीक वैसे ही जैसे ओटोमन साम्राज्य के अंतिम सुल्तान थे जो अपना साम्राज्य बिखरने के दौरान भी लोकलुभावनवाद से चिपके रहे थे, ट्रंप पतन का प्रतीक हैं, पुनरुत्थान का नहीं।

इस बीच, चीन एक पूर्ण-स्पेक्ट्रम प्रतिद्वंद्वी के रूप में उभरा है - आर्थिक रूप से, सैन्य रूप से और तकनीकी रूप से। यही वह यथार्थ है जिसे सुनक ने स्वीकार किया। और उन्होंने यह भारत में किया, जहां कॉर्पोरेट वर्ग यह मानने के लिए बेताब रहा है कि वे चीन के बराबर हैं। यह अंतर इससे अधिक स्पष्ट नहीं हो सकता था।

भारत आपूर्ति श्रृंखला हब के रूप में?

सुनक ने एक



बहुध्रुवीय दुनिया हकीकत, चीन अमेरिका के समकक्ष

लाइनें शिफ्ट कर सकती थीं। इसके विपरीत, भारत बहुत दूर, बहुत नौकरशाही से घिरा, लॉजिस्टिक्स में बहुत महंगा और नीतिगत रूप से बहुत अनिश्चित था। चीन पर भारत की एक पब्लिक स्टंट रुपी जीत थी -

जब इसे चीन + 1 में सफल होने की सबसे अधिक संभावना वाला ताज पहनाया गया था, तब मोदी ट्रंप के अच्छे दोस्त थे! देख लीजिए कि मोदी अब ट्रंप के साथ कहां खड़े हैं?

भारत ने मौके गंवाए

सुनक ने इंगित किया कि यदि भारत वास्तव में एक विनिर्माण हब बनना चाहता है, तो उसे कड़वी सच्चाइयों का सामना करना होगा। इन्हें इस तरह समझिए-

प्रत्यक्ष विदेशी

हो। लेकिन संतुलन तभी काम करता है जब आपके पास प्रभाव (लीवरेज) हो। विनिर्माण गहराई के बिना, भारत की लीवरेज सीमित है।

ओईसीडी का कर्ज टूटने के कगार पर?

सुनक ने आगे कहा कि पश्चिमी ऋण बाजार एक कसीनो में बदलते जा रहे हैं। जरा अमेरिका, जापान और फ्रांस को ही देख लीजिए। सुनक ने चेतावनी दी कि टेक कंपनियां जल्द ही अमेरिकी सरकार की तुलना में अधिक कर्ज जारी कर सकती हैं, जिससे यह पता चलता है कि निजी पूंजी किस तरह हावी है, जो त्वरित मुनाफे के पीछे भागती है और अर्थव्यवस्थाओं को अस्थिर छोड़ देती है।

भारत को समझना होगा कि चीन का मॉडल अलग है। कर्ज का संचालन राज्य द्वारा किया जाता है, जिसका उपयोग रेलवे, कारखाने और हरित तकनीक बनाने के लिए किया जाता है, न कि अल्पकालिक रिटर्न पर जुआ खेलने के लिए। यह दृष्टिकोण सभ्यतागत है, चीन ने हमेशा स्थिरता और दीर्घकालिक योजना को महत्व दिया है। विकासशील देशों के लिए, वह पूर्वानुमानशीलता पश्चिमी वित्त की तुलना में कहीं अधिक टिकाऊ है, जो कि शिकारी और अल्पकालिक है। बहुध्रुवीय दुनिया में, चीन की कर्ज प्रणाली टिकने के लिए बनी हुई प्रतीत होती है।

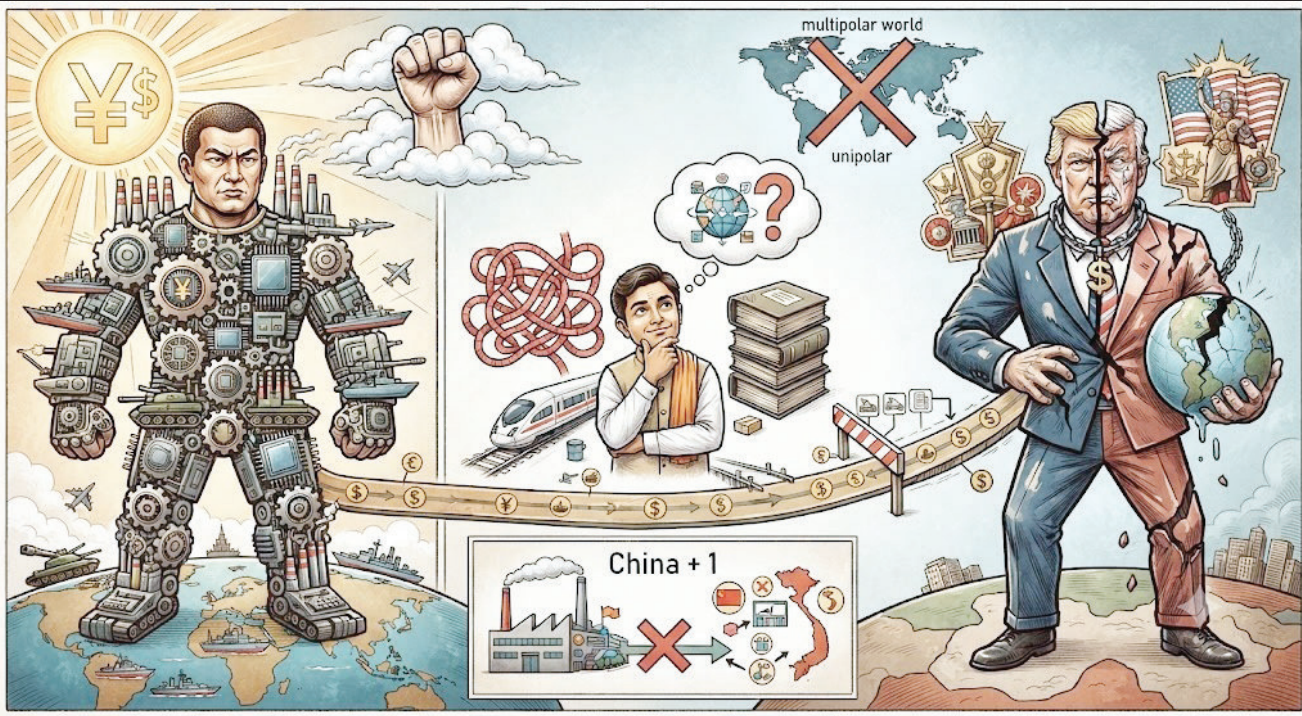
सुनक के कहने का अर्थ!

भारत में सुनक का भाषण सिर्फ एक नीतिगत चर्चा से कहीं अधिक था। यह एक यथार्थ की जांच (रियलिटी चेक) थी। चीन नई महाशक्ति है और अमेरिका का समकक्ष है। भारत अभी भी एक आकांक्षी देश है। बहुध्रुवीयता आ चुकी है। ओईसीडी का कर्ज चिंता का विषय है।

भारत के सामने विकल्प बिल्कुल स्पष्ट है, चीन की जगह लेने के भ्रम के पीछे भागते रहना या यथार्थ को स्वीकार करना और अपने स्वयं के निवेश माहौल में सुधार करते हुए चीनी आपूर्ति श्रृंखला के साथ एकीकृत होना। अन्यथा, भारत पीछे छूट जाने का जोखिम उठाता है, और वियतनाम तथा आसियान को विडंबनापूर्ण विविधीकरण का लाभ उठाते देखता रहेगा।

भ्रम से निकलो!

नई दिल्ली में सुनक के शब्दों ने भ्रम के पदों को चीर दिया। अमेरिका के नेतृत्व वाला क्रम अब जा चुका है। ट्रंप अमेरिकी पतन के लक्षण हैं। चीन एक समकक्ष प्रतिद्वंद्वी है। और भारत? अभी भी अपने पल का इंतजार कर रहा है, लेकिन जब तक वह अपना रास्ता नहीं बदलता - खुद को निवेश के अनुकूल नहीं बनाता और चीन के साथ एकीकृत नहीं होता, वह बहुध्रुवीय दुनिया के हाशिए पर ही बना रहेगा। समय विश्वगुरु के भ्रम से निकल जमीनी यथार्थ समझने और आगे रास्ता तलाशने का है, अपनी शान में कसीदे पढ़ने का नहीं!



प्रलोभन भी दिया - पश्चिम द्वारा चीन से दूरी बनाने के साथ ही भारत एक भरोसेमंद साझेदार और संभावित आपूर्ति श्रृंखला हब बन सकता है। लेकिन सच कहें तो - यह वही चीन + 1 धारणा है जिसे हमने 2020 में भी सुना था। तब पश्चिमी कंपनियों ने कहा था कि वे चीन से अपने कारखाने बाहर ले जाएंगी। विजेता भारत नहीं था, वह वियतनाम था।

क्यों? क्योंकि वियतनाम चीन का पड़ोसी है और सीधे तौर पर चीनी आपूर्ति श्रृंखलाओं से जुड़ा हुआ है। इसके बंदरगाह, लॉजिस्टिक्स और औद्योगिक क्लस्टर दक्षिणी चीन के विनिर्माण पारिस्थितिकी तंत्र के साथ एकीकृत हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियां अपनी आपूर्ति श्रृंखला की रीढ़ को तोड़े बिना वियतनाम में असेंबली

निवेश अनुकूलता

निवेशक लाल फीताशाही, अचानक होने वाले कर परिवर्तनों और कमजोर बुनियादी ढांचे की शिकायत करते हैं। भारत को इसे ठीक करना चाहिए।

चीनी आपूर्ति श्रृंखलाओं के साथ एकीकरण - यह दिखावा करना कि आप चीन की जगह ले सकते हैं, एक कल्पना मात्र है। समझदारी भरा कदम चीन के पारिस्थितिकी तंत्र से जुड़ना है, उससे लड़ना नहीं। वियतनाम ने यह बात समझ ली। भारत ने इसका विरोध किया और हार गया।

भू-राजनीतिक यथार्थवाद - भारत एक स्विंग स्टेट बनना चाहता है, जो गुटों के बीच संतुलन साध रहा